ISSN : 0373-1200
जुलाई 2003

विज्ञान

अप्रैल 1915 से प्रकाशित हिन्दी की प्रथम विज्ञान पत्रिका

मूल्य : 9.00 रु०

चमगादड़ों की विचित्र दुनिया

अनोखी है दुनिया चीटियों की

नैनो टेक्नोलॉजी

ओस में नहायी पत्तियाँ

कीवी

विज्ञान परिषद्

प्रयाग

विज्ञान परिषद् प्रयाग

सी. एस. आई. आर. तथा डी. बी. टी. नई दिल्ली के आंशिक अनुदान द्वारा प्रकाशित

विज्ञान

परिषद् की स्थापना : 10 मार्च 1913
विज्ञान का प्रकाशन : अप्रैल 1915
वर्ष : 89 अंक : 4
जुलाई 2003

मूल्य

दसवार्षिक : 1000 रुपये
त्रिवार्षिक : 300 रुपये
वार्षिक : 100 रुपये
यह प्रति : 9.00 रुपये

सभापति
डॉ० (श्रीमती) मंजु शर्मा

सम्पादक, मुद्रक एवं प्रकाशक
डॉ० शिवगोपाल मिश्र
प्रधानमंत्री, विज्ञान परिषद् प्रयाग

विज्ञान परिषद् प्रयाग के लिए
नागरी प्रेस
91/186, अलोपी बाग, इलाहाबाद में मुद्रित
फोन : 2502935, 2500068

आन्तरिक सज्जा व टाइप सेटिंग
शादाब खालिद
79/65, सब्जी मण्डी, इलाहाबाद, फोन : 2651264

आवरण
चन्द्रा आर्ट्स
तालाब नवलराय, इलाहाबाद, फोन : 2558001

सम्पर्क
विज्ञान परिषद् प्रयाग
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद–211002
फोन : 2460001 ई–मेल : vigyan1@sancharnet.in
वेबसाइट : www.webvigyan.com

विषय सूची

नैनो नैनोटेक्नोलॉजी : एक सिंहावलोकन

डॉ० आर.एस. दुबे

> *"शक्तिशाली उद्योगों के निर्माण में नैनो टेक्नोलॉजी की भूमिका अति महत्त्वपूर्ण स्थान रखेगी। इसका स्वागत इक्कीसवीं सदी के द्वार पर धूमधाम से किया जायेगा, क्योंकि इस टेक्नोलॉजी में अनेक नूतन संभावनायें जन्म लेंगी तथा वैज्ञानिकता को धारण कर सम्पूर्ण सेवाओं को अनूठे आयाम देने में सक्षम रहेंगी।"*
>
> **— प्रोफेसर जी.ए. ओलाह**
>
> (नोबेल पुरस्कार विजेता, रसायनशास्त्र, सन् 1994)

आध्यात्मिक पद्धति में सूक्ष्मता का तात्पर्य अमुक साधक की पराकाष्ठा या शीर्ष अवस्था की अभिव्यक्ति है। स्मरण रहे कि सत्य पर आधारित आध्यात्म एवं पारिखी विज्ञान की सामंजस्यता आपस में समानुपाती है। दोनों की मोहकता में जीवन–संगति का लय है। अविलगित स्वार्थपरता और परमार्थ दोनों का स्वरूप अतिसूक्ष्म पर एक है। ऐसी अभिधारणा है कि जब जीव को दुर्लभ या असम्भावी कार्य करना होता है तो वह सामान्य से सूक्ष्मावस्था को प्राप्त करता है। साधना के दौरान, साधक के चारों ओर रक्षा कचव (aura) का निर्माण भी सम्भवतः नैनो कणों के संघनन का ही परिणाम होता है, जिसमें विकिरण आदि को रोकने की अद्‌भुत क्षमता होती है। विज्ञान साधना है और वैज्ञानिक एक कुशल साधक। वैज्ञानिकों की दृष्टि में विज्ञान भी सूक्ष्मता को प्राप्त कर संसार को विलक्षण स्वरूप देने जा रहा है, जिसको वैज्ञानिक भाषा में 'नैनोटेक्नोलॉजी' (Nanotechnology) शब्द से सम्बोधित किया जा रहा है। अगणित जटिल प्रयोगों के आधार पर वैज्ञानिक इस नतीजे पर पहुँचे हैं कि 'पदार्थों के कण 10^{-9}वाँ अंश ग्रहण करते ही उनकी गुणवत्ता में विलक्षणात्मक परिवर्तन आ रहा है।' पदार्थ के इस विलक्षण गुण को अमरीका, जापान एवं जर्मनी के वैज्ञानिकों ने सत्यापित कर लिया है। भारत इस दौड़ में अभी कहीं नहीं है। यदि भारत की आध्यात्मिक या पौराणिक सांकेतिक भाषा पर गौर किया जाये तो कोई अतिशयोक्ति न होकर इस टेक्नोलॉजी की खोज एवं विस्तार सर्वप्रथम भारतवर्ष में होना चाहिए था। उदाहरणार्थ, श्री रामचन्द्रजी के कार्य हेतु अष्टसिद्धि नवनिधि के स्वामी हनुमान जी ने राक्षसी सुरसा द्वारा सौ जोजन का मुख करने पर अतिलघु रूप (मच्छर के बराबर) धारण किया था। यदि
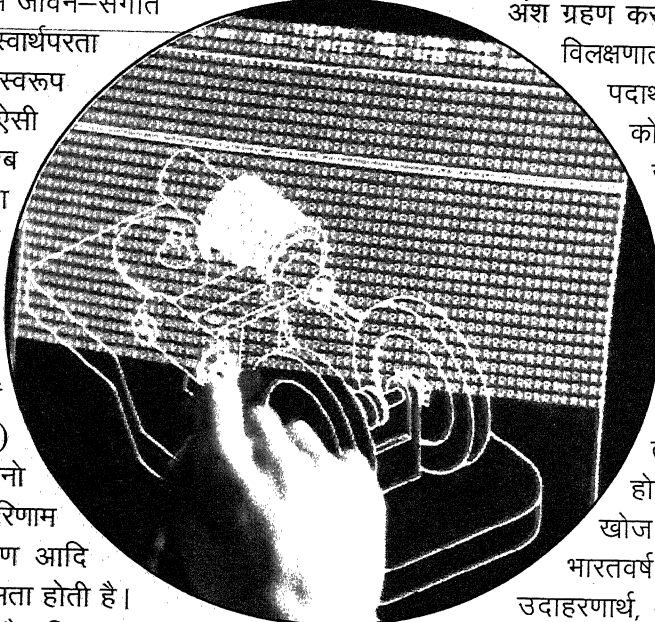
दोनों दूरियों को एक पैमाने पर मापा जाये तो हनुमान जी का आकार 10^{-3}वाँ भाग लघु हुआ था।

सत जोजन तेहि आनन कीन्हा।
अति लघु रूप पवनसुत लीन्हा।।

– (रामचरितमानस, सुन्दरकाण्ड, चौपाई संख्या पाँच)

इस प्रकार यह स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है कि हमारे पुराणों में भी 'नैनो–आकार' की परिकल्पना ही नहीं, वास्तविक स्वरूप का भी अनुप्रयोग मिलता है। अफसोस है कि इसकी परिव्यापकता पर भारतीय वैज्ञानिकों ने दृष्टिपात ही नहीं किया। एक अन्य उदाहरण जर्मनी चिकित्सा (होम्योपैथी) में भी 'नैनो' की उपयोगिता स्पष्ट दिखाई पड़ती है। जर्मन होमियोपैथी चिकित्सा पद्धति कहती है कि जैसे–जैसे दवा की तनुता (Dilution) बढ़ाई जाती है वैसे वैसे दवा की 'शक्ति' में वृद्धि होती है। अभी तक इस सिद्धान्त की कोई मौलिक वैज्ञानिक व्याख्या उपलब्ध नहीं है। अंकगणित के मुताबिक 'नैनो' परिसीमा द्वारा इस तथ्य को परिभाषित किया जा सकता है। कदाचित् आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति में धातुभस्म के पीछे ऐसे ही ठोस तथ्य छिपे हैं।

नैनो परिमाप पर आधारित विज्ञान एवं अभियांत्रिकी, रचनात्मक पदार्थों की क्रियात्मक संरचनाओं तथा उनके गुणधर्मो को अभिव्यक्ति करने वाली अतिसूक्ष्म वैज्ञानिक क्रमबद्धता को अत्याधुनिक शब्दों में **नैनोटेक्नोलॉजी** कहते हैं। गौर करने पर स्पष्ट रूप से अकार्बनिक, कार्बनिक एवं जैवीय पदार्थों का अरबांशाकार अस्तित्व प्राकृतिक रूप से अनादि काल से दृष्टिगोचर होता है। पृथ्वी एवं जीवजगत के निर्माण में प्रारम्भिक अवस्था से ही इसकी उपयोगिता रही है। उदाहरणार्थ जीवाणु, चट्टानों, धूम्रक, कोहरा आदि। जीव के परिप्रेक्ष में डी.एन.ए. की द्विकुण्डली का व्यास लगभग 2 नैनोमीटर तथा राइबोसोम का व्यास 25 नैनोमीटर के बराबर होता है। मानवनिर्मित नैनो आकृति पदार्थों की नूतन उत्पत्ति एक ऐसी डोमेन आकार के अवयवीय कणिकायें हैं जिसके द्वारा अभियांत्रिकी में अकल्पनीय क्रांति आने की प्रबल संभावनाएँ हैं। यह भावोत्तेजक कल्पना नहीं, वैज्ञानिक कसौटियों पर परखा सत्य होगा। प्रमाणस्वरूप विभिन्न क्षेत्रों में नैनो कणों के कौशल का कुशलतापूर्वक अनुप्रयोग हो रहा है और उनकी क्रियात्मकता चौंकाने जैसी प्रक्रिया में परिणत हो रही है।

नैनो की सूक्ष्मता के विज्ञान तले निर्मित विश्व का स्वरूप अनूठा होगा। अब यह सिर्फ परिकल्पना नहीं, इसकी वैज्ञानिक परख हो चुकी है। इनके आकार और गुणवत्ता को अनेक वैज्ञानिक विश्लेषणात्मक तकनीकों द्वारा जाँच–परख लिया जाता है। स्वभावतः प्रगतिशील नैनो कणों की स्वच्छन्दता अलग–अलग अवस्थाओं में वैज्ञानिक ढंग से अनुशासित होकर रूढ़ियों को तोड़ रही है। दो दशक पूर्व, नैनो संरचना युक्त पदार्थों पर अनुसंधान की गतिशीलता दिन–प्रतिदिन नूतन आयाम धारण कर रही है। नैनो आसमान पर छायी लालिमा निःसंदेह अति मनोरम दृश्य उभारेगी। नैनो टेक्नोलॉजी के अति सक्रिय एवं विस्तृत परिक्षेत्र में अनुसंधानों एवं विकासों की तीव्रता समाई है। विज्ञान और अभियांत्रिकी के साथ औद्योगिक क्षेत्रों तक इसका विस्तार फैला है। इस विद्या का विज्ञान एवं दर्शन अभी प्रारम्भिक अवस्था में है। विकसित देश जैसे अमेरिका, जापान, जर्मनी में नैनो टेक्नोलॉजी पर आधारित विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के सर्वांग विकास के लिए अनेक सरकारी योजनायें चलाई जा रही हैं। इन देशों में नैनोटेक्नोलॉजी पर होने वाले अनुसंधान का त्वरित विस्तार शैक्षणिक संस्थानों, औद्योगिक क्षेत्रों, सरकारी प्रयोगशालाओं एवं उद्योगों तक फैला हुआ है। बीसवीं शताब्दी के अंतिम मोड़ पर उभरी बेशकीमती नैनोटेक्नोलॉजी आधारित उद्योगों का विस्तार इक्कीसवीं सदी में शीर्ष पर स्थापित होगा, क्योंकि नैनो आकृति वाले कणों से निर्मित पदार्थों की आदर्श रासायनिक गुणवत्ता जैसे वैद्युत, प्रकाशकीय, चुम्बकीय आदि में सामान्य आकृति वाले पदार्थों से बिल्कुल भिन्न होती है। अन्य शब्दों में यह कहा जा सकता है कि नैनो पद्धति द्वारा निर्मित पदार्थों में रासायनिक बदलाव की अनन्त सम्भावनाएँ व्याप्त हैं। नैनो पदार्थों में क्रियात्मक समूहों को प्रतिस्थापित करके विशेष 'अर्थग्राही' अनुक्रिया प्राप्त की जा सकती है। क्रमागत विकास की बागडोर आज नैनोटेक्नोलॉजी के

हाथ में हैं तथा आलोचनाओं–प्रत्यालोचनाओं के बीच लौकिक अभिलाषाएँ दिन–प्रतिदिन साकार होती दृष्टिगोचर हो रही हैं।

नैनो आकृति वाले पदार्थों और उन पर आधारित प्रौद्योगिकियों का वायुयानों, स्वचालितों, काटने के यंत्रों, रंग–रोगनों, लेपनों, एक्स–किरण प्रौद्योगिकी, उत्प्रेरकों, अवाष्पित स्मृतियों, संवेदकों, संगणक–चिप्सों, चुम्बकीय प्रकाश डिस्कों, अन्वेषियों, प्रकाश विश्लेषकों, सौर–सेलों, लीथोग्राफी, होलोग्राफी, प्रकाश उत्सर्जकों, आण्विक स्तर के ट्रांजिस्टरों एवं स्विचों, ड्रग वितरण, दवाओं, आयुर्विज्ञान अंतर्रोप (Implant), भैषजी, प्रसाधानों आदि क्षेत्रों हेतु भविष्य में अनेकानेक व्यापक संरचनायें विद्यमान हैं। नैनो आकृति (अरबांशाकृत) वाले पदार्थों में छिपी विलक्षणता के विस्तृत स्वरूप की उपयोगिता अनुसंधान के सभी क्षेत्रों में नयी नयी आवश्यकता भरी तृष्णा को संबल प्रदान कर रही है, जिसके चलते संदर्भित कार्यों को करने हेतु वैज्ञानिकों में रुचि पैदा करने के साथ–साथ आशा भरी किरणों में और चमक पैदा कर रही है।

विश्व के वैज्ञानिकों एवं शिक्षाविदों के बीच चर्चित नैनोटेक्नोलॉजी आधुनिक विकास का ताज धारण करती चली आ रही है। ऐसा कोई भी देश नहीं, जहाँ नैनोटेक्नोलॉजी संबंधित शोधकार्य न हो रहे हों। सन् 1970 में तीन वैज्ञानिकों मैक डायर्मिड, एलेनेहीगर और हिदेकी शिराकावा ने बहुलकों की आणविक संरचना में परिवर्तन करके उनमें विद्युत प्रवाहित करने में सफलता पायी। वैज्ञानिकों ने कुचालक प्लास्टिक में विद्युत प्रवाहित कर विज्ञान में एक नये परिवर्तन को जन्म दिया। इस चमत्कारिक कार्य के लिए इन वैज्ञानिकों को नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया। यही मौलिक अनुसंधान आज नैनोटेक्नोलॉजी की आधारशिला बनी है। तकरीबन पचीस वर्ष पूर्व नाभिकीय आयुधों की प्रयोगशाला में माइक्रोमैकेनिकल अभियांत्रिकी और माइक्रोइलेक्ट्रोमेकेनिकल तंत्रों के विभिन्न नामों के साथ नैनोटेक्नोलॉजी के आयाम बढ़ते गये। आणविक स्तर पर पदार्थों में फेरबदल करने से उनकी कार्यक्षमता में विलक्षणता आ जाती है तथा इनकी उपयोगिता के आयाम में सहसा बेतहाशा वृद्धि हो जाती है। जैसे डिफेंस वीकली में नैनो टेक्नोलॉजी पर प्रकाशित एक विशेष रिपोर्ट (द पोटेंशियल फार न्यू विपेंस ऑफ मास डिस्ट्रक्शन) के मुताबिक नैनो टेक्नोलॉजी की सहायता से नाभिकीय आयुधों के आकार को छोटा करने के साथ साथ उन्हें शक्तिशाली भी बनाया जा सकता है। फलस्वरूप, उत्तरोत्तर नवीनतम् उत्साहवर्धक विषयों का जन्म हो रहा है। संक्षेप में क्रमानुसार नैनो आकृति के पदार्थों की विज्ञान एवं टेक्नोलॉजी विशेषताओं का वर्णन निम्नवत् है :

नैनो शब्द मूलतः ग्रीक भाषा का है, जिसका अर्थ अति सूक्ष्म या 'अति बौना' होता है। मापन की अन्तर्राष्ट्रीय प्रणाली में नैनो का तात्पर्य अरबांश से है, जिसका मान 10^{-9} मीटर के बराबर होता है। नैनो टेक्नोलॉजी का आविर्भाव एवं उपयोगिता प्रकृति में स्वभावतः सदा से विद्यमान रही है।

नैनोटेक्नोलॉजी एवं विविध प्रयोग

अगणित खूबियों से लदी नैनोटेक्नोलॉजी के अनेक आयामों का संक्षिप्त ब्यौरा प्रस्तुत किया जा रहा है।

1. हल्के एवं मजबूत पदार्थों का निर्माण नैनोतकनीकी द्वारा किया जा सकता है, जिसके प्रयोग से वाहनों एवं उपकरणों के आकार छोटे एवं हल्के हो सकते हैं जिससे उनके परिवहन एवं ईंधन में काफी बचत हो सकती है। इसका सर्वोत्तम उपयोग अंतरिक्ष यानों के निर्माण में होगा।

2. यंत्रों एवं अन्य युक्तियों के सूक्ष्मीकरण में नैनोटेक्नोलॉजी की अहम भूमिका होगी। दैनिक उपयोग में आने वाली वस्तुएँ जैसे वस्त्र, कृषि, औषधि, लेखन सामग्री, कला, इलेक्ट्रानिक्स आदि के विकास में वृहद उपयोगी साबित होंगी।

3. नैनोटेक्नोलॉजी आधारित उद्योगों में अवांछनीय उप–उत्पाद की संभावनाएँ करीब करीब नहीं के बराबर होंगी। अतः पर्यावरण संबंधी समस्याओं

शेष पृष्ठ 10 पर

मानव प्रतिरूप (क्लोन) से उठे ज्वलंत प्रश्न

डॉ० जे.एल. अग्रवाल

मानव के प्रतिरूप बनाने की कल्पना ही करते थे, पर अब कल्पना साकार बन रही है तो अनेक प्रश्न उठ खड़े हो गये हैं। मानव क्लोन बनाने के क्लोन एड्स कम्पनी के दावे से इसकी जरूरत, औचित्य पर बहस शुरू हो गयी है। इससे पूर्व अमेरिका की एक अन्य शोध कम्पनी ने सन् 2001 में दावा किया कि उन्होंने मानव क्लोन तैयार कर लिया है। इन खबरों के पश्चात् वैज्ञानिक, चिकित्सकों, विधिवेत्ता और समाज में दो पक्ष बन गये हैं : कुछ मानव क्लोन के समर्थक हैं कुछ विरोधी।

'डॉली' भेड़ के क्लोन तकनीक से जन्म के पश्चात् ही मानव क्लोन बनाने की भूमिका तैयार हो गयी थी, तकनीक विकसित हो गयी थी पर समय का इंतजार था। क्लोन एड्स कम्पनी की स्थापना सन् 1997 में एक धार्मिक गुरु रैल (Rael) द्वारा की गयी थी। इन मतावलम्बियों की धारणा है कि मानव की उत्पत्ति बाह्य सौरमंडल के प्राणी ने क्लोनिंग द्वारा लगभग 25 हजार वर्ष पूर्व की। मनुष्य की उत्पत्ति करने वाले बाह्य सौर मंडल के प्राणी का नाम इलोहिम (Elohim) था और इसका जिक्र हिब्रू बाइबिल में भी है। इन मतावलम्बियों की धारणा है कि मानव को क्लोनिंग द्वारा ही अजर, अमर बनाया जा सकता है। इस मत को माननें वाले वैज्ञानिक मानव क्लोनिंग पर प्रतिबंध के बावजूद भी अपने प्रयास में सफल हो गये हैं।

क्लोन क्या है : मानव जीवन का अस्तित्व साधारणतः माँ के अंडे और पिता के शुक्राणु के मिलन से होता है। माँ के अंडे में गुणसूत्र 22 X होते हैं जबकि पिता के शुक्राणु में 22 X या 22 Y गुणसूत्र मौजूद होते हैं। इनके मिलने से पुरुषों में 44 XY और महिलाओं में 44 XX गुणसूत्र बन जाते हैं। अतः हर व्यक्ति की शरीर कोशिकाओं में आधे गुणसूत्र माँ और आधे पिता से प्राप्त होते हैं। सामान्यतः शरीर की हर कोशिका के केन्द्रक में सम्पूर्ण गुणसूत्र होते हैं और इनका आकार, व्यवहार, स्वरूप, गुण माता पिता का मिश्रण होता है।

क्लोन विधि द्वारा शरीर की किसी भी एक कोशिका से उसी के प्रतिरूप को तैयार किया जा सकता है क्योंकि क्लोन में मौजूद सभी गुणसूत्र दाता के होते हैं। इस कारण क्लोन द्वारा तैयार व्यक्ति को रंग, रूप एवं अन्य गुण हूबहू दाता के समान ही होंगे। क्लोन विधि से एक व्यक्ति के मनचाही संख्या में हमशक्ल प्रतिरूप तैयार किये जा सकते हैं।

क्लोन तैयार करना नयी विधि नहीं है। अनेक वर्षों से क्लोन द्वारा पौधे, मेंढक, टोड इत्यादि

सफलतापूर्वक विकसित किए जा चुके हैं। मानव क्लोन बनाने की संभावना फरवरी 1997 में स्कॉटलैंड में सबसे पहले स्तनधारी जीव डॉली भेड के जन्म से हुई। इसके पश्चात् वैज्ञानिक सफलतापूर्वक मानव क्लोन की तैयारी में जुट गए थे।

क्लोनिंग द्वारा बिना प्रजनन के किसी भी व्यक्ति के हमशक्ल व्यक्ति का जन्म होता है। क्लोन तैयार करने के लिए महिलाओं के अंडे से केन्द्रक निकाल दिया जाता है और उसमें किसी भी अन्य व्यक्ति की कोशिकाओं से गुणसूत्र प्रवेश करा दिए जाते हैं। इस अंडे को दाता व्यक्ति के पूरे गुणसूत्र मिल जाते हैं। दाता की कोशिका शरीर के किसी भी स्थान से ली जा सकती है। अब इसको महिला के गर्भाशय में रोपित कर दिया जाता है। गर्भाशय में यह अंडा विकसित होकर क्लोन शिशु बन जाता है जोकि दाता का हमशक्ल समगुण होता है।
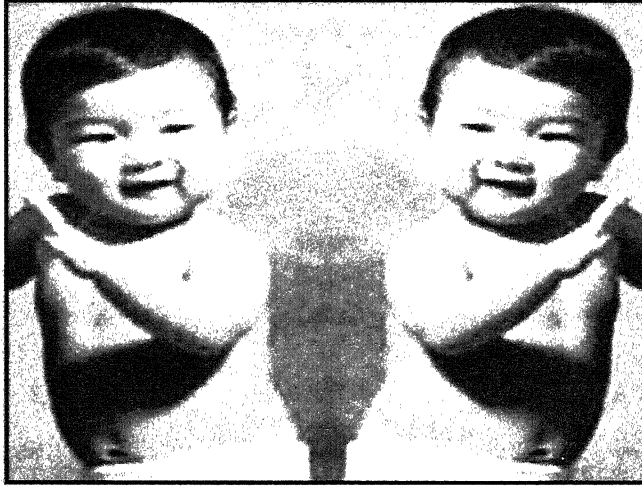
अनेक वैज्ञानिक क्लोन को समान गुणसूत्रों वाले व्यक्ति कहते हैं। यह हमशक्ल भी हो सकते हैं पर इनको गुण, बुद्धिमत्ता, याददाश्त, व्यक्तित्व दाता के समकक्ष देना अक्सर संभव नहीं हो पाता है क्योंकि मानव का व्यक्तित्व, व्यवहार, बुद्धिमत्ता, ज्ञान का निर्माण जन्म के पश्चात् लालन पालन, समाज, परिवार, वातावरण इत्यादि तत्वों द्वारा भी प्रभावित होता है। साथ ही मानव के अनेक गुण– लम्बाई, वजन इत्यादि भी गर्भाशय अवस्था और जन्म के पश्चात् भोजन, वातावरण इत्यादि तत्वों से भी प्रभावित हो सकते हैं। अतः आवश्यक नहीं है कि वे क्लोन हर मामले में दाता का प्रतिबिम्ब ही हों।

मानव क्लोन तैयार करने के अनेक समर्थक हैं, जबकि अन्य इसके प्रबल विरोधी। दोनों ही पक्ष तर्कों द्वारा अपने को सही सिद्ध करने का प्रयास कर रहे हैं। क्लोन समर्थकों की मान्यता है कि इसका प्रयोग मानव जीवन के विस्तार, नस्ल में सुधार और रोगमुक्त करने के लिए किया जा सकता है।

क्लोन विधि के विकास के साथ ही भविष्य में मानव के विभिन्न अंगों का निर्माण संभव है– जैसे कि यकृत, अग्न्याशय, त्वचा, रक्त, हृदय, मस्तिष्क, कोशिकाएँ और इनको प्रत्यारोपण में प्रयुक्त किया जा सकता है। क्लोनिंग विधि से तैयार अंग की संरचना बिल्कुल मानव सदृश्य ही होगी। साथ ही, इनके प्रत्यारोपण से इनके निष्क्रिय होने की समस्या नहीं रहेगी। क्लोन विधि का उपयोग मधुमेह, पारकिन्सन्स, अल्जीमर्स, कैंसर इत्यादि रोगों के स्थायी उपचार में किया जा सकता है। जीन थिरैपी की संभावनाएँ अनंत हैं।

प्रजनन क्लोनिंग के द्वारा एक तरह के जुड़वाँ बच्चों का दो अलग माँओं से जन्म हो सकता है। इस विधि के उपयोग से निःसंतान दम्पत्ति के स्वयं के बच्चे जन्म ले सकते हैं। समलैंगिक महिलाओं की संतान संभव है। यदि किसी प्रियजन की मौत हो जाती है तो उसी के गुणसूत्रों से व्यक्ति का जन्म हो सकता है। महान वैज्ञानिक, दार्शनिकों, विद्वानों के प्रतिबिम्ब बनाये जा सकते हैं।

मानव क्लोन के विरोधी समाज के हर वर्ग में मौजूद हैं। उनके अनुसार किसी भी कारण से मानव क्लोन तैयार करना न न्यायसंगत है न ही उचित। इनका कोई औचित्य नहीं है। इनके अनुसार हर तरह से मानव क्लोनिंग अनावश्यक है। इस तरह जन्मे बच्चों

शेष पृष्ठ 13 पर

क्वॉआर : सौर परिवार का दसवाँ सदस्य

इरफान ह्यूमन

हम जानते हैं कि सौर मण्डल के सभी ग्रहों–उपग्रहों का निर्माण सौर पदार्थ से ही हुआ है। सौर मण्डल अर्थात् सूर्य का अपना परिवार जिसमें वुध, शुक्र, पृथ्वी, मंगल, बृहस्पति, शनि, अरुण, वरुण और यम यानी प्लूटो के साथ धूमकेतु और क्षुद्र ग्रह जैसे अनेक आकाशीय पिंड भी शामिल हैं, लेकिन हाल ही में अब तक खोजे गये ग्रहों में सूर्य से सबसे अधिक दूरी पर एक नया ग्रह खोज लिया गया है जिसका नाम है क्वॉआर।

अगर देखा जाए तो सौर मण्डल के दसवें ग्रह की खोज का सूत्रपात उन्नीसवीं सदी के शुरू में ही हो चुका था। अमेरिकी खगोल वैज्ञानिक परसीवल लावेल ने कल्पना की थी कि हमारे सौर मण्डल में 10वाँ ग्रह भी है। उन्होंने इसका नाम 'एक्स' ग्रह रखा था। लावेल ने मृत्युपर्यन्त एक्स ग्रह की खोज जारी रखी, लेकिन वह अपने प्रयास में सफल नहीं हो सके। परसीवल लावेल की मृत्यु के बाद उनके भतीजे ने इस ग्रह की खोज का क्रम जारी रखा। हमारे सौर मण्डल का नौवाँ ग्रह यम हमेशा रहस्यमय रहा है। यह पानी और मीथेन का जमा हुआ बर्फ का ग्रह है जो अपनी खोज से पहले और बाद में, साथ ही वरुण और अरुण ग्रह सौर मण्डल के 10वें ग्रह की खोज से कहीं न कहीं जुड़े रहे हैं।
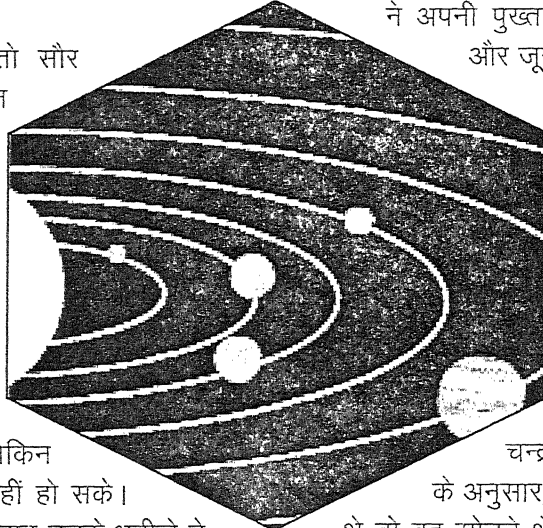
गत शताब्दी में वैज्ञानिक सौर मण्डल के नौ ग्रहों के अतिरिक्त इसके अन्य ग्रहों की उपस्थिति के अपने अपने मात्र तर्क ही प्रस्तुत कर सके थे। कुछ खगोलशास्त्री तो इसी बात से संतुष्ट हो गए थे कि 26वीं सदी के करीब जब 10वाँ ग्रह पृथ्वी के सबसे निकट स्थान से गुजरेगा तभी वैज्ञानिक इसके दर्शन कर इसके विषय में और अधिक जानकारी प्राप्त कर पायेंगे, लेकिन इक्कीसवीं शताब्दी में आखिर 10वें ग्रह ने अपनी पुख्ता उपस्थिति दर्ज करा ही दी और जून, 2002 में आखिर बहुप्रतीक्षित 10वाँ ग्रह यम से 1.6 बिलियन किलोमीटर की दूरी पर खोज लिया गया। पासाडेना में कैलीफोर्निया इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी के खगोल वैज्ञानिक माइक ब्राउन ने बताया कि 10वें ग्रह का आकार यम के मुकाबले आधा है लेकिन यह यम के चन्द्रमा चेरॉन से बड़ा है। ब्राउन के अनुसार, जब वह क्वॉआर की खोज में थे तो वह सोचते थे कि इस जैसे कई और ऐसे पिण्ड हैं जो अब तक खोजे नहीं गए हैं, हो सकता है कि वे यम से बड़े आकार के भी हों। वह सात महीने तक 48 इंच व्यास वाली ओसचीन नामक अर्धस्वचालित दूरबीन की मदद से इस पर नजर रखे रहे, अंततः इसकी पुष्टि हो गई कि यह भी हमारे सौर मण्डल का ही साथी है।

क्वॉआर की खोज से पूर्व वैज्ञानिकों को 10वें ग्रह की उपस्थिति को लेकर एक विचित्र बात यह दिखाई दी कि सभी ग्रह सूर्य की परिक्रमा करते हैं, लेकिन अरुण और वरुण ग्रह सूर्य की परिक्रमा करते समय अपने पथ से लड़खड़ाते हैं। ऐसा प्रतीत होता था जैसे कोई अन्य भारी आकाशीय पिण्ड इनकी गति को प्रभावित कर रहा हो और अपने गुरुत्वाकर्षण से इन्हें खींच रहा हो। उसके प्रभाव से इन ग्रहों की वृत्तीय कक्षायें भी प्रभावित हो रही थीं, लेकिन पायनियर अंतरिक्ष यान की यात्रा से ग्रह के गुरुत्वाकर्षण बल का कोई ऐसा प्रभाव नहीं देखा गया।

इस बारे में खगोल वैज्ञानिकों का कहना था कि जब पायनियर यान अरुण के पास था उस समय वह अनजाना ग्रह दूर जा चुका था। जब ऐसे किसी अज्ञात ग्रह की खोज की जा रही थी तो उसी समय यम (प्लूटो) की उपस्थिति सामने आई। वैज्ञानिक समझे कि यही वह ग्रह है जो अरुण और वरुण की गति को प्रभावित कर रहा था, लेकिन गहन अध्ययन के बाद उन्हें अपनी सोच बदलनी पड़ी क्योंकि यम ग्रह इतना छोटा था कि अरुण और वरुण की गति को इतना अधिक प्रभावित नहीं कर सकता था। इस प्रकार पुनः 10वें ग्रह की खोज जारी हो गई।

पायनियर से प्राप्त संकेतों से यह ज्ञात हुआ था कि 10वाँ ग्रह अंतरिक्ष में किस किस स्थानों पर नहीं है। इसी बात की नासा के वैज्ञानिकों ने गणना प्रारम्भ कर दी कि 10वाँ ग्रह अंतरिक्ष के किस खाली स्थान पर होना चाहिए। वैज्ञानिकों ने गणना कर डाली कि इस ग्रह का पथ विषम होना चाहिए और अन्य ग्रहों से 10 अंश के कोण पर होना चाहिए। वैज्ञानिकों ने अनुमान लगाया कि यह अज्ञात ग्रह सूर्य के तल की लम्बवत् दिशा में परिक्रमा करता होना चाहिए। उस समय नेशनल एयरोनॉटिक्स एण्ड स्पेस एडमिनिस्ट्रेशन (नासा) के वैज्ञानिकों ने यह भी अनुमान लगाया कि यह सर्वाधिक ठण्डा ग्रह सूर्य की परिक्रमा करने में 700 से 1000 वर्ष का समय लेता होगा और पृथ्वी के निकट आने में इसे शताब्दियाँ बीत जाती होंगी।

जो भी हो, नई शताब्दी में हमें सौर मण्डल का एक नया साथी मिल ही गया। क्वॉआर हमसे लगभग 42 खगोलीय इकाई (खगोलीय इकाई अर्थात् ए.यू. जो पृथ्वी और सूर्य के बीच की दूरी के बराबर होती है जो लगभग 150 मिलियन किलोमीटर है) दूर है। वहाँ सूर्य का प्रकाश पहुँचने में पाँच घण्टे पचपन मिनट लग जाते हैं। यदि कोई अंतरिक्ष यान जिस गति से पृथ्वी की परिक्रमा करता है उस गति से चलने पर क्वॉआर तक जाए जो उसे 25 वर्ष लग जायेंगे। एक क्वॉआर वर्ष पृथ्वी के 285 वर्षों के बराबर होता है।

क्वॉआर की वास्तविक संरचना क्या है ? अभी वैज्ञानिक इस विषय में ठीक ठीक कुछ नहीं कह सकते। वैज्ञानिकों का मानना है कि क्यूपर पट्टी के अधिकतर पिण्ड पत्थर और वर्फ से बने हैं। हो सकता है कि बहुत से ऐसे रसायन जो पृथ्वी पर द्रव रूप में हैं, क्वॉआर पर जमी हुई अवस्था में हों, जैसे पानी, मीथेन, मिथेनॉल, कार्बन डाइआक्साइड और कार्बन मोनो आक्साइड आदि। क्वॉआर क्यूपर पट्टी पर अभी तक ज्ञात सबसे बड़ा पिण्ड है। यदि देखा जाये तो यह नया ग्रह पृथ्वी के व्यास के दसवें हिस्से के बराबर है और सूर्य की परिक्रमा 285 वर्षों में पूरी करता है। इसकी सूर्य से दूरी चार अरब मील है। क्वॉआर को यम की खोज (वर्ष 1930) के बाद सबसे बड़ी उपलब्धि माना जा रहा है।

इस विषय में वैज्ञानिक एक मत नहीं हैं क्वॉआर वास्तव में ग्रह है। यदि देखा जाये तो सौर मण्डल के 9वें ग्रह प्लूटो के ग्रह होने में अभी भ्रांतियाँ हैं। वैज्ञानिकों का मानना है कि सन् 1930 में खगोलशास्त्री क्लायड टाम्बो ने यम की खोज पुरानी विधियों से की थी लेकिन आज के उन्नत विज्ञान से इस ग्रह को ग्रह की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। खगोल वैज्ञानिकों का मानना है कि उनके द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत के अनुसार यम की उत्पत्ति सौर मण्डल के आठ ग्रहों की तरह नहीं हुई बल्कि संभवतः यह सौर मण्डल के बाहर किसी भटके हुए धूमकेतु का अवशेष है जो सूर्य के प्रभाव से सौर

शेष पृष्ठ 13 पर

कीवी

स्व० रामेश बेदी

कीवी चीन का मूल पौधा है। चीन में इसे यांग–ताओ (yang-tao) कहते हैं। वनस्पति शास्त्र में आक्तीनीदिआ क्रीनेन्सिस प्लांखोन (Actinidia chinensis planchon) कहते हैं। यह अनुकूल अवस्थाओं में एकलिंगी, जोरदार वल्लरी, ऊँचाई पन्द्रह मीटर तक, घेरा तीस सेंटीमीटर तक, पत्ते 7.5 से 12.5 सेंटीमीटर लम्बे, लम्बे वृन्त वाले, पत्रफलक चौड़ाई लिए लम्बगोल, अण्डाकृति से लेकर गोलाकृति, कदाचित् तीक्ष्णाग्र या जरा सी लम्बी नोकवाला, फूल कक्षीय गुच्छों में या कदाचित एकाकी, व्यास में पाँच सेंटीमीटर तक, निलम्बी, क्रीम रंग के, फल 2.5 से 5.0 सेंटीमीटर लम्बे, आकृति में गोल से लेकर अण्डाकृति या लम्बोतरे, छिलका रफ़, भूरा सा, छोटे कड़े बालों से आवृत, गूदा प्रायः फीका हरा, बीज जामुनी काले होते हैं। यह पौधा बेल्जियम, फ्रांस, जर्मनी, इंग्लैंड, रूस, जापान, न्यूजीजैंड और अमेरिका में सफलतापूर्वक उग रहा है। न्यूजीलैंड में इसके अनेक अधिक अच्छे भेद विकसित कर लिए गए हैं।
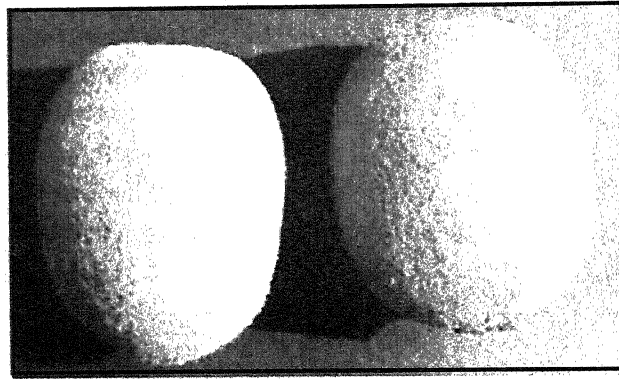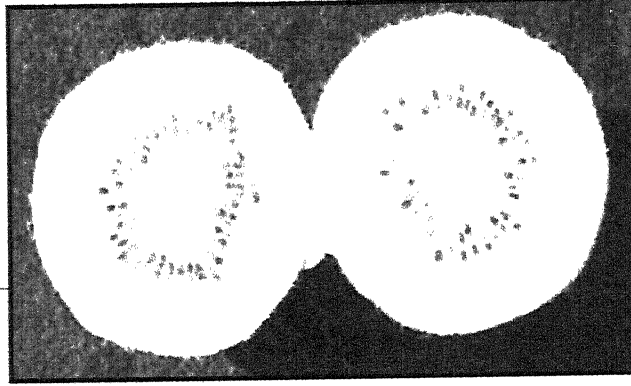
भारत में यह बंगलौर के लाल बाग में सम्प्रविष्ट किया गया था लेकिन यह प्रयोग असफल रहा। 1963 में न्यूजीलैंड से एल्लीसोन संतति (allison strain) के कुछ पौधे प्राप्त किए गए थे और उन्हें उत्तरी पहाड़ियों (हिमाचल प्रदेश) में 2,600 मीटर की ऊँचाई पर बोया गया था। नये जलवायु के अनुकूल बनने में इन्हें कुछ समय लग गया और अन्ततः 1969 में ये फूलने और फलने लगे।

मई में यह पौधा फूलता है और नवम्बर में फल पकते हैं। फलने के पहले साल ही पैदावार कम थी, लगभग पचास फल लगे थे। अनुवर्ती मौसमें में बढ़कर प्रति पौधे लगभग 500 फल लगने लगे।

कृषि

आर्थिक दृष्टि से लाभदायक खेती के

लिए कलमों से पौधे उगाये जाते हैं। इन्हें बगीचे में स्थायी स्थानों पर केवल प्रसुप्तावस्था में स्थानान्तरण कर देना चाहिए। पंक्तियों में 7.5 से 9.0 मीटर के फासले पर लगाना चाहिए। पंक्तियों की आपसी दूरी 4.2 से 5 मीटर रखनी चाहिए।

नर और मादा फल अलग अलग पौधों पर लगते हैं। अधिकतम प्रभावशाली परागीकरण के लिए पर्याप्त संख्या में नर पौधों को रोपना जरूरी है। ये समान दूरी पर रोपे जाते हैं और उनके चारों ओर मादा पौधे लगाए जाते हैं। मादा और नर पौधों का अनुपात औसतन 6 : 1 होना चाहिए।

बीजों से भी आसानी से पौधे उग आते हैं। अनुभवी फलोत्पादक बीजों के प्रजनन की सलाह नहीं देते क्योंकि फूलने तक पौधों के लिंग का पता नहीं चलता। केवल आधार (root-stocks) बनाने के लिए बीजों से पौधे उगाना लाभदायक है जिन पर चुनिन्दा और बढ़िया सन्तति के पौधों की कलमबन्दी की जाती है।

खेती के लिए गहरी, उपजाऊ, पानी के अच्छे निकास वाली रेतीली दुमट की सिफारिश की जाती है। जलमग्न और कठोर भूमि नहीं होनी चाहिए।

सर्दियों के पालों से फलों को नुकसान नहीं होता बल्कि इनसे फलों में बढ़िया सुगन्ध और स्वाद विकसित हो जाते हैं। लेकिन बेल की वृद्धि के दौरान किसी समय और फूलने के समय पाला पड़ जाए तो बहुत हानि होती है। बेलों को बाड़ों या लता मण्डपों पर चढ़ाया जाता है।

फल सामान्यतया चालू मौसम की वृद्धि के प्ररोहों पर लगते हैं। नियमित फसलें और बढ़िया फल प्राप्त करने के लिए साल में दो बार छँटाई करते हैं– एक बार, गर्मियों में जब बेलों की तेजी से वृद्धि हो रही होती है, फिर सर्दियों में जब बेलें प्रसुप्त अवस्था में होती हैं।

फल जब दृढ़ हों तभी तोड़ लेते हैं और खाने से पहले सात से दस दिन तक पकने और मुलायम होने देते हैं। बेल को गम्भीर बीमारियाँ नहीं लगतीं, लेकिन पत्ते खाने वाली सुण्डियाँ बेलों पर आक्रमण करती हैं जिसे कीटनाशकों के प्रयोग से नियंत्रित किया जा सकता है।

शीत भण्डारण में फल करीब आठ सप्ताह तक रखे जा सकते हैं। समूचा फल या उसके कतरे काटकर परिरक्षित करते हैं। मूल्यवान् सलादों में फल डालते हैं। आइसक्रीमों को सजाने के लिए इन फलों का इस्तेमाल करते हैं। इनसे शराब, जैम, मार्मलेड आदि अनेक उत्पाद बनाए जाते हैं।

कैलिफोर्निया के ताजे फल के खाद्य भाग का विश्लेषण निम्नलिखित है : आर्द्रता 81.2, प्रोटीन 0.79, वसा, 0.07, कार्बोहाइड्रेट्स 17.5 और राख 0.45 प्रतिशत। कैल्सियम 16.0, मैग्नीसियम 30.0, फास्फोरस 64.0 और लोहा 0.51 मिलीग्राम प्रति 100 ग्राम। इसमें निम्नलिखित विटामिन विद्यमान होते हैं : थायमीन 0.02, राइबोफ्लेविन 0.05, निआसिन 0.5, विटामिन सी 105.0 मिलीग्राम प्रति 100 ग्राम और विटामिन ए 175 अन्तर्राष्ट्रीय इकाइयाँ। ताजे फल के भक्ष्य भाग के प्रति 100 ग्राम में 66 उष्मा इकाइयाँ होती हैं। ताजे फलों में विटामिन सी का परिमाण नारंगियों की तुलना में दोगुना होता है। एक भारतीय नमूने के प्रति 100 ग्राम फल में 300 मिलीग्राम तक विटामिन सी पाया गया। फलों में एक प्रोटीनलयी एंजाइम, एक्टिनिडिन भी पाया जाता है। यह माँस को मृदु बनाने के लिए इस्तेमाल किया जाता है। फल का रस पपीता और नाशपाती के रसों जैसे रसों के साथ संमिश्रण (blend) करने में काम आता है। यह नाश्ते के पेय में दिया जाता है। ताजा हरे रंग का फल का गूदा डेज्जर्ट (dessert) के रूप में परोसा जाता है। पत्तों का ऐल्कोहली निष्कर्ष ग्रैमग्राही (gram-positive) बैक्टीरियों को मारने में सक्रिय होता है।

बेदी शोध संस्थान
डी 28 राजौरी गार्डन
नई दिल्ली-110027

पृष्ठ 3 का शेष .....

से भी छुटकारा आसान होगा, जो पूरी व्यवस्था के लिए सबसे बड़ा अभिशाप है।

4. नैनो रेशों या धागों से निर्मित वस्त्रों पर दागों एवं धब्बों की शिकायत नहीं रहेगी। ऐसे वस्त्रों का भी निर्माण किया गया है, जिन पर सलवटें नहीं पड़ती हैं। उष्मारोधी वस्त्रों का भी निर्माण करने में काफी सहायता हाथ लगी है, जिसका उपयोग रक्षा आदि के क्षेत्र में व्यापक स्तर पर किया जा सकता है।

5. नैनो आकृति वाले उत्प्रेरकों के प्रयोग से औद्योगिक उत्पादन क्षमता को बढ़ाने में काफी सफलता मिल रही है। उदाहरणार्थ– कैडमियम एवं टाइटैनियम आदि के नैनो कणों वाले यौगिकों का उपयोग उत्प्रेरक के रूप में हो रहा है।

6. नैनो कणों द्वारा विशेष प्रकार के छन्नकों का निर्माण किया जा चुका है, जिसके छिद्रों का आकार लगभग दस से सौ नैनोमीटर के बराबर होता है, जिनका उपयोग पेट्रोल एवं डीजल से अनावश्यक सूक्ष्मकणों को विलगित करने के लिए किया जा सकता है।

7. नैनो बहुलकों एवं नैनो सिरेमिक्स द्वारा ऐसे टायरों का निर्माण करना संभव होगा, जिसमें घिसने की प्रवृत्ति सामान्य टायरों की अपेक्षा काफी कम होगी तथा टायरों की उम्र के साथ साथ आधार से पकड़ने की क्षमता भी कई गुना ज्यादा होगी। परिणामस्वरूप, टकराव एवं फिसलन जैसी खतरनाक समस्याओं से बचा जा सकता है।

8. नाभिकीय ऊर्जा संयंत्रों एवं नाभिकीय अपशिष्ट प्रबंधन में नैनो छन्नकों का योगदान अति महत्वपूर्ण हो सकता है। पेय जल के साथ साथ हवाओं में उपस्थित अवांछित कणों एवं प्रदूषकों को नैनो आकार के छन्नकों द्वारा आसानी से अलग किया जा सकता है।

9. कृषि में नैनोटेक्नोलॉजी द्वारा जैव उर्वरकों तथा कीटनाशकों का निर्माण का होना अति महत्वपूर्ण स्थान रखता है। फसलों की सुरक्षा एवं उत्पादन क्षमता में कई गुना वृद्धि हो सकती है।

10. इस विधि द्वारा उर्वरकों एवं कीटनाशकों द्वारा मानव स्वास्थ्य पर पड़ने वाले कुप्रभाव को भी कम किया जा सकता है।

11. नैनो आकार वाले पदार्थों द्वारा इलेक्ट्रानिक्स के क्षेत्र में विशेष क्रांति की संभावनायें प्रबल हो रही हैं जिसमें इलेक्ट्रान के व्यवहार को आवश्यकतानुसार व्यवस्थित किया जा सकता है। यंत्रों के आकार को न्यून करने एवं कार्य क्षमता को बढ़ाने में काफी मदद मिलेगी।

नैनो टेक्नोलॉजी एवं जैव प्रौद्योगिकी

नैनो आकृति के यंत्रों की सहायता से जैविक एवं अजैविक पदार्थों की रचनाओं को सरलतापूर्वक समझाया जा सकता है। इसका उपयोग बीजों, कीटनाशकों, रसायनों, उर्वरकों, कृषि सामग्रियों को स्वेच्छानुसार रूपान्तरित किया जा सकता है। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि इस तकनीकी की मदद से विश्व में व्याप्त भुखमरी को समूल नष्ट किया जा सकता है क्योंकि अनाज उत्पादन की क्षमता कई गुना ज्यादा बढ़ जायेगी।
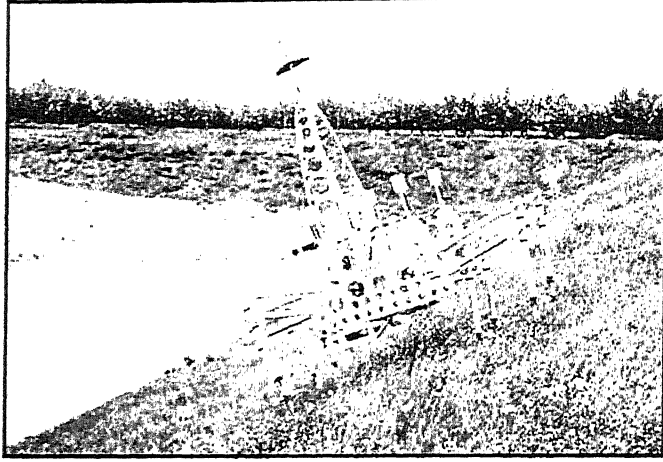
नैनो टेक्नोलॉजी एवं पर्यावरण

नाभिकीय ऊर्जा संयंत्रों में प्रयुक्त होने वाले फिल्टर की मदद से ईंधन का संसाधन, शुद्धिकरण एवं अपशिष्ट प्रबन्धन आदि को आसानी से उत्कृष्ट किया जा सकता है। नैनो फिल्टर की मदद से पेट्रोलियम में उपस्थित अनुपयुक्त सूक्ष्म कणों को आसानी से अलग करके प्रदूषण से मुक्ति पायी जा सकती है। नैनो कम्पोजिट पदार्थों की सहायता से हल्के वाहनों का निर्माण किया जायेगा, जिन्हें संचालित करने में कम से कम ईंधन की आवश्यकता पड़ेगी। नैनो बहुलकों एवं सिरैमिकों से बने टायरों में घिसने की प्रवृत्ति कम होगी। परिणामस्वरूप, प्रदूषण को नियंत्रित किया जा सकता है।

नैनो रोबोट

रोगियों के शरीर में संक्रमित कोशिकाओं तक सीधे दवा पहुँचाने हेतु वैज्ञानिकों ने ऐसे नैनो रोबोट की परिकल्पना की है, जो इस कार्य को सुगमतापूर्वक कर सकते हैं। आकार में ये इतने सूक्ष्म होंगे कि रक्त परिसंचरण तंत्र में आसानी से तैर सकते हैं। इनके निर्माण में मुख्यतः कार्बन का प्रयोग किया जायेगा। जरूरत पड़ने पर हाइड्रोजन, सल्फर, नाइट्रोजन, क्लोरीन आदि का भी सहारा लिया जायेगा। वैज्ञानिकों की योजना है कि एक खुराक में दस से सौ खरब रोबोट भेजे जा सकते हैं। इनकी संख्या विभिन्न परिस्थितियों पर निर्भर करेगी तथा नैनो रोबोटों की आकृति इनके कार्य की प्रकृति पर निर्भर करेगी। कुछ रोबोट धमिनयों में तैरेंगे तो कुछ ऊतकों में रेंगने की क्षमता रखने वाले रोबोट अलग अलग किस्म के होंगे, जो दवाओं से लदे और संवेदकों से पूर्णतः नियंत्रित होंगे जिनका समुचित उपयोग संक्रमित कोशिकाओं तक दवाओं को पहुँचाना होगा। इनकी मदद से दवाओं की डिलिवरी सौ फीसदी सफलतापूर्वक की जा सकती है। इन पर लगे संवेदक दवाओं के पहुँच जाने की सूचना देंगे तथा इन रोबोटों को नियंत्रित करने के लिए ध्वनि तरंगों का उपयोग किया जायेगा। नैनो टेक्नोलॉजी के विशेषज्ञ डॉ0 राबर्ट ए. प्रिटास जूनियर के अनुसार कुशल रोबोट का स्वरूप तैयार कर लिया गया है, जिसका नाम उन्होंने 'रेस्पीरोसाइट' रखा है। खासतौर पर, इस रेस्पीरोसाइट को श्वांस की बीमारियों से लड़ने के लिए तैयार किया गया है। इनके निर्माण में अट्ठारह अरब अणुओं का प्रयोग किया गया है जिसमें सर्वाधिक कार्बन के अणु हैं तथा एक सूक्ष्म दाब यंत्र लगाया गया है, जिसमें नौ अरब आक्सीजन और कार्बन डाइआक्साइड के अणुओं को भरा गया है तथा इन अणुओं का रोबोट द्वारा नियंत्रण किया गया। रेस्पीरोसाइट शरीर में उपस्थित हीमोग्लोबिन में पाये जाने वाली रक्त कोशिकाओं की तरह काम करेगा। यदि किसी स्वस्थ व्यक्ति में इन रोबोटों का पाँच घन सेन्टीमीटर का इंजेक्शन दे दिया जाये तो वह उसके पूरे शरीर की आक्सीजन और कार्बन डाइआक्साइड की मात्रा के बराबर होगी। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि यदि किसी व्यक्ति के शरीर में एक लीटर रेस्पिरोसाइट छोड़ दिया जाये तो वह व्यक्ति 15 मिनट बिना सांस लिए अपनी सर्वाधिक गति से दौड़ सकता है या पूरी क्षमता से काम कर सकता है।

नैनो प्रौद्योगिकी एवं व्यावसायिक प्रयास

नैनो पदार्थों की उपयोगिता के मद्देनजर इनके व्यावसायिक उत्पादन की आवश्यकता प्रबल होती जा रही है। परन्तु अभी इनकी उत्पादन क्षमता आसान एवं सुविधाजनक नहीं है। अनेक आशंकाओं के चलते बड़ी निजी कंपनियाँ इसमें धन लगाने से पूर्णतः कतरा रही हैं। उदाहरण के तौर पर कुछ कम्पनियों ने अपने कदम आगे बढ़ाये हैं। जैसे– डो केमिकल्स नामक कंपनी नैनो आकृति के कम्पोजिट्स का निर्माण कर रही है, जिसका उपयोग कृत्रिम उपग्रहों के निर्माण में किया जा रहा है। दूसरी अमेरिका की कंपनी माइक्रो सर्फेस इनकार्पोरेटेड ने कार्बन नलिकाओं के निर्माण की जिम्मेदारी संभाली है। आयरन एवं बहुलकों की सहायता से नैनो कम्पोजिट का निर्माण अमेरिका की एक अन्य कंपनी द्वारा किया जा रहा है, जिसका उपयोग बैटरियों

में किया जायेगा।

नैनो विज्ञान के विकास एवं प्रसार में विभिन्न देशों की भूमिका

नैनो टेक्नोलॉजी द्वारा भविष्य के प्रति बड़ी से बड़ी आशाएँ बँधती जा रही हैं। अल्पावधि में अधिक विस्तार पा लेने की मानवीय प्रवृत्ति के कारण जीवन की अनिवार्यता को पूरा करना अपरिहार्य सा हो गया है। नैनो टेक्नोलॉजी की बहुआयामी उपयोगिता को देखते हुए विकसित देशों ने इसके विकास हेतु अनेक संगठनों को खड़ा कर लिया है तथा उसकी बुनियादी आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए उसे प्रचुर मात्रा में धन उपलब्ध कराया जा रहा है। अमेरिका स्थित नेशनल नैनो टेक्नोलॉजी इनीसियेटिव कार्यक्रम के लिए 2002 में 70 करोड़ डालर की राशि प्रदान की गई। स्मरण रहे कि यह राशि 2001 में 42–50 करोड़ तक ही सीमित थी। ज्वाइन्ट इंस्टीट्यूट ऑफ नैनोसाइंस एंड नैनो टेक्नोलॉजी की भी स्थापना की गई, जिसमें सौ से भी अधिक वैज्ञानिक अनुसंधान कर रहे हैं। ब्रिटेन सरकार ने नैनो प्रौद्योगिकी को विकसित करने के लिए 70 लाख डालर राशि की व्यवस्था की है। जर्मन सरकार नैनो टेक्नोलॉजी के विभिन्न क्षेत्रों में कार्य करने हेतु पाँच करोड़ डालर का अनुदान दिया है एवं जापान ने बारह सौ करोड़ डालर उपलब्ध कराये हैं। रूस ने नैनो टेक्नोलॉजी के क्षेत्र में सर्वाधिक प्रगति कर ली है।

नैनो टेक्नोलॉजी के विकास हेतु भारत सरकार अनेक विशिष्ट परियोजनाओं को वित्तीय सहायता प्रदान कर रही है। नैनो टेक्नोलॉजी अनुसंधान कार्य मुख्यतः जवाहर लाल नेहरू सेन्टर फार एडवांस्ड साइंटिफिक रिसर्च, हैदराबाद, भारतीय विज्ञान संस्थान (आई.एस.सी.), बंगलौर, भारतीय प्रौद्योगिक संस्थान (आई.आई.टी), कानपुर, चेन्नई, मुम्बई, खड़कपुर, रुड़की, राष्ट्रीय रासायनिक प्रयोगशाला पुणे, टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ फंडामेंटल रिसर्च तथा भाभा एटामिक रिसर्च सेन्टर, मुम्बई, रक्षा अनुसंधान एवं विकास संगठन (डी.आर.डी.ओ.), हैदराबाद, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी आदि जैसे महत्वपूर्ण संस्थानों/विश्वविद्यालयों में शोधकार्य चल रहे हैं।

प्रकाशन, पेटेंट एवं भविष्य

नैनो टेक्नोलॉजी पर आधारित शोधपत्रों का प्रकाशन सन् 1992 में करीब करीब शून्य के बराबर था, परन्तु 2002 तक प्रकाशन के आँकड़े आसमान छूने लगे थे या यूँ कहें कि नैनोटेक्नोलॉजी सिर्फ वैज्ञानिक परिकल्पनाएँ न होकर विकसित देशों में कार्यरूप में आकर सेवाओं के स्वरूपों को विभिन्न आयाम दे रही हैं। नैनोटेक्नोलॉजी एवं नैनो पदार्थों के संश्लेषण पर पेटेंट दर्ज कराने की दिशा में हो रही उत्तरोत्तर बढ़ोतरी के आँकड़े यह दर्शा रहे हैं कि औद्योगिक एवं शैक्षणिक दोनों समूहों का झुकाव इस नैनो टेक्नोलॉजी की ओर हो रहा है। राष्ट्रगत दर्ज कराये गये पेटेंटों में जापान की प्रतिशतता अकेले तिरपन प्रतिशत है। अन्तर्राष्ट्रीय पैमाने पर देखा जाय तो जापान और कोरिया की दौड़ में काफी संनिकटता है जबकि संयुक्त राज्यों का आँकड़ा चार गुना ज्यादा है। पेटेंट के आँकड़े दर्शाते हैं कि नैनो क्षेत्रों में सर्वाधिक कार्य नैनो पदार्थों के संश्लेषण, प्रक्रमीकरण एवं इलेक्ट्रान उत्सर्जन युक्तियों को खोजने में किया जा रहा है। अन्य क्षेत्रों जैसे कम्पोजिट्स, संवेदकों, हाइड्रोजन–ऊर्जा भण्डारण, बैटरी आदि पर प्रगति की प्रतिशतता संतोषजनक है। स्वतंत्र रूप से चल रही नैनोटेक्नोलॉजी की दौड़ में नैनो नलिकाओं की उपयोगिता के दोहन की प्रबल संभावनाएँ हैं। नैनो टेक्नोलॉजी के परिक्षेत्र में, भविष्य की गहराइयों एवं बौद्धिक अंधकार को खत्म करने तथा निर्माण के क्षेत्र को विस्तृत करने हेतु अगणित आयाम खुलते जा रहे हैं।

उच्चानुशीलन केन्द्र
रसायन अभियांत्रिकी एवं प्रौद्योगिकी विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय-221005

पृष्ठ 5 का शेष ....

के माँ या पिता कौन होंगे, उनके कानूनी अधिकार क्या होंगे ?

इनके अनुसार क्या मानव जीवन इतना सस्ता है कि हम क्लोन शिशु को प्रत्यारोपण के लिए अंग प्राप्त करने के लिए मार देना उचित है ? बीमार व्यक्ति को जीवन दान देने के लिए क्लोन को मारना क्या उचित है ? धार्मिक व्यक्तियों के अनुसार 'क्लोन निर्माण' ईश्वर सृष्टि के नियमों में हस्तक्षेप है जिसके भविष्य में गंभीर दुष्परिणाम होंगें। क्या मानव आत्मा के क्लोन तैयार करना संभव है ?

डर है कि भविष्य में क्लोन की दुकानों में सामान की तरह यह उपलब्ध होंगे। क्लोन तैयार करने की विधि अत्यधिक जटिल है और बीमार विकृति क्लोन के जन्म की संभावना सदैव बनी रहेगी। ध्यान रखें डॉली भेड़ प्रथम प्रयास में नहीं, 277 प्रयासों के पश्चात् ही वह जन्म ले सकी थी।

क्लोन तो खिलौने, गुड्डे, गुड़ियों की तरह समझे जा सकते हैं। इनसे माँ, पिता से प्यार, लगाव समाप्त होने की संभावना है।

पूरी संभावना है कि कोई सिरफिरा अपराधी, क्रूर हत्यारों की क्लोन विधि से फौज तैयार कर विश्व सम्राट बनने का प्रयास करे।

प्रश्न है कि क्लोन संतति है या प्रतिरूप ? एक तरह से क्लोन को संतान कहा जा सकता है। पर क्लोन में दाता के समकक्ष गुणसूत्र होते हैं तो इसे लम्बे अन्तराल के पश्चात् जन्म लिया जुड़वा मानना चाहिए। अर्थात् क्लोन दाता का भाई या बहन हुआ। क्लोन परिवार प्रथा के लिए बहुत बड़ा प्रश्नचिन्ह है जिससे अनेक न्यायिक, सामाजिक समस्याएँ उठ खड़ी होंगी। यहाँ तक कि डॉ0 इयान 'जिन्होंने डॉली भेड़ को तैयार किया' के अनुसार मानव क्लोन तैयार करना गलत है। मेरे विचार से भी मानव क्लोन तैयार करना अनावश्यक है और अनैतिक है।

मेडिकल कालेज
काँगड़ा , (हिमाचल प्रदेश)-176001

पृष्ठ 7 का शेष ....

मण्डल का सदस्य बन गया है। इसी प्रकार क्वॉआर को भी कुछ वैज्ञानिक ग्रह नहीं मानते।

इस संबंध में खगोल वैज्ञानिक चैड ट्रूजिलो का कहना है कि क्वॉआर यम के आकार का आधा है। लेकिन और भी आकाशीय पिण्ड हैं जैसे नौ सौ किलोमीटर व्यास का 'वरुण' तथा 900 किलोमीटर का ही '2002 ए डब्ल्यू 197' क्यूपर पट्टी के दो बड़े आकाशीय पिण्ड हैं जिन्हें ग्रह नहीं माना जाता। क्यूपर पट्टी अंतरिक्ष में एक ऐसा क्षेत्र है जहाँ जाने पहचाने लगभग 600 आकाशीय पिण्ड हैं जिन्हें बीती शताब्दी के अन्तिम दशक तक विभिन्न वैज्ञानिकों द्वारा खोजा गया। जो भी हो क्वॉआर को सौर मण्डल के एक ग्रह के रूप में मान्यता मिल गई है।

वैज्ञानिकों के अनुसार क्यूपर पट्टी में क्वॉआर जैसे अभी दस और ऐसे ही पिंड खोजे जा सकेंगें। 10वें ग्रह की खोज के बाद अभी वैज्ञानिक इसके अन्य पहलुओं की बारीकी से खोजबीन कर रहे हैं वहीं कुछ वैज्ञानिक सौर मण्डल के अन्य ग्रह भी होने की बात कर रहे हैं। यदि देखा जाये तो क्वॉआर की खोज से पूर्व उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में ब्रिटेन स्थित मिल्टन केनेस की यूनिवर्सिटी के वैज्ञानिक डॉ0 जान मेरे ने बताया था कि हमारे सौर परिवार के सबसे बाहरी क्षेत्र में सूर्य की परिक्रमा कर रहा एक अजनबी ग्रह भी है। उन्होंने दावा किया था कि इस ग्रह का आकार बृहस्पति से बड़ा होगा। लेकिन क्वॉआर की खोज से मिल्टन की बात गलत सिद्ध हो गई, क्योंकि क्वॉआर का व्यास बृहस्पति से ही नहीं बल्कि सभी ग्रहों से कम है। लेकिन अब प्रश्न उठता है कि क्या यह वही ग्रह है जो अरुण और वरुण ग्रहों की गति को प्रभावित कर रहा था। यदि नहीं तो सौर मण्डल का एक और ग्रह भी हो सकता है, यानी सौर मण्डल का ग्यारवाँ ग्रह।

संपादक
साइंस टाइम्स न्यूज़ एण्ड व्यूज़
रिसर्च, 67 अन्टा, शाहजहाँपुर-242001

ओस में नहायी पत्तियाँ

ललित किशोर पाण्डेय

संस्कृत में 'कमलपत्र इवाम्भसाम्' कह कर एक निर्लिप्त जीवन जीने का निर्देश हमें प्राचीन मनीषियों ने दिया है। कमल, घुइयाँ या पातगोभी के पत्ते पर गिरा जल सिकुड़ कर चमकीली बूँदें बना लेता है और पत्ते को छोड़कर जल बाहर गिर जाता है तथा पत्ता सूखा का सूखा निकल आता है। चुकन्दर की पत्ती पर यही जल की बूँदें चपटी होकर फैल जाती हैं, और पत्ती को गीला कर देती हैं। इस प्रकार के अनेक उदाहरण हमें प्रतिदिन प्रकृति में देखने को मिलते हैं। परन्तु जल के प्रति विभिन्न पौधों की बन्धुता में इतनी भिन्नता क्यों है ? यह विषय महत्वपूर्ण होते हुए भी इस पर कार्य बहुत कम किया गया है। इस दिशा में शोध इसलिए भी आवश्यक प्रतीत होता है क्योंकि कृषि कार्य में प्रायः ही हमें पौधों पर विभिन्न रसायनों का छिड़काव करना पड़ता है।

पत्तियों की विभिन्न द्रवों के प्रति बन्धुता और उनके भीगने की प्रक्रिया को समझने के लिए भीगने के मापन का एक साधन निर्धारित करना आवश्यक है। स्पर्श कोण ही वह साधन है जो हमें यह बताता है कि किसी पत्ती के भीगने की सीमा क्या है। स्पर्श कोण द्रव की फिल्म का वह किनारा जो द्रव तल के सम्पर्क में है तथा उस तल के बीच के कोण को कहते हैं जबकि वह तल क्षैतिज है। जब द्रव किसी समतल पर अनन्त रूप से फैल जाता है तो वह समतल उस द्रव द्वारा पूर्णतया भिगो दिया जाता है। इस दशा में द्रव एवं समतल के बीच का स्पर्श कोण शून्य होता है। यदि समतल के भीगने की प्रवृत्ति कम है तो स्पर्श कोण बढ़ता जायेगा और यदि कोई समतल एक विशेष द्रव द्वारा बिल्कुल नहीं भीगता तो स्पर्श कोण का मान 180° होगा। यह निम्न चित्रों से स्पष्ट है।

स्पर्श कोण किसी द्रव द्वारा समतल को भिगोने
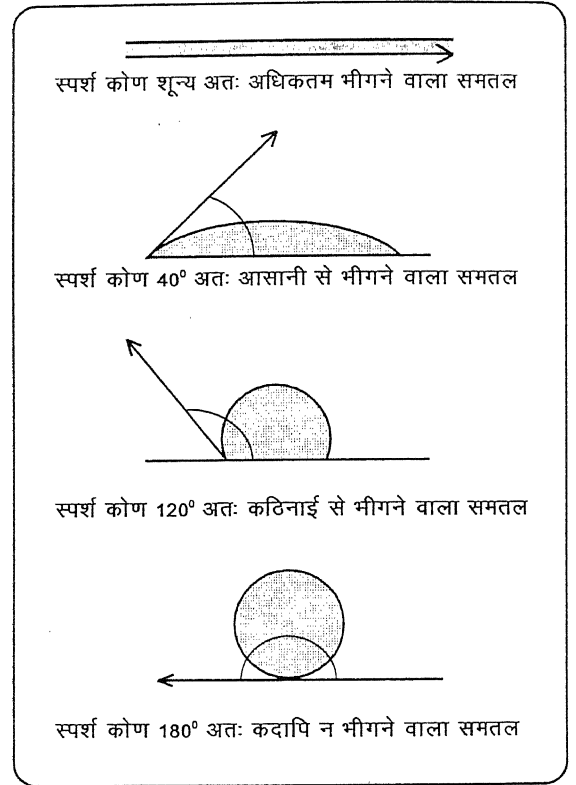
की प्रवृत्ति को मापने का इसलिए भी अच्छा साधन है क्योंकि स्पर्श कोण का मान द्रव की बूँद के आकार पर निर्भर नहीं करता। किसी विशेष द्रव की बूँद चाहे छोटी हो अथवा बड़ी, किसी विशेष समतल के लिए उसका

स्पर्श कोण उतना ही रहता है। द्रव की पश्चगामी गति के लिए स्पर्श कोण का मान कुछ कम हो जाता है। उदाहरण के लिए चुकन्दर की पत्ती और जल के बीच का स्पर्श कोण 60° होता है। अब यदि चुकन्दर की पत्ती को हिलायें ताकि पानी की बूँद पत्ती पर फैल जाये तो स्पर्श कोण लगभग 10° रह जाता है। परन्तु हमारा प्रयोजन यहाँ उस स्पर्श कोण से है जब द्रव पानी पर स्थिर अवस्था में स्थित है।

उचित प्रकाशिक व्यवस्था के माध्यम से प्रक्षेपी द्वारा किसी पत्ती पर पड़ी बूँद को एक पर्दे पर चित्रित कर और उसका रेखांकन कर स्पर्श कोण ज्ञात कर सकते हैं। पत्ती की पूरी सतह एक समान समतल नहीं होती अतः एक ही पत्ती पर विभिन्न स्थितियों में पड़ी द्रव की बूँदों के लिए स्पर्श कोण पृथक पृथक होते हैं और उन सबका माध्य ही उस द्रव और पत्ती के बीच का स्पर्श कोण माना जा सकता है।

स्पर्श कोण मापन सम्बन्धी उपरोक्त विधि किसी पृष्ठ की भीगने की प्रवृत्ति को प्रदर्शित करने की सन्तोषजनक विधि है। विभिन्न प्रजातियों के पौधों की पत्तियों में भीगने की प्रवृत्ति भिन्न भिन्न सीमा तक पायी जाती है। पातगोभी, दालों और घासों की प्रजातियों की वे वनस्पतियाँ जिनकी पत्तियाँ मोटी और चिकनी होती हैं, के लिए जल का स्पर्श कोण 10° या अधिक होता है जबकि पतली तथा नाजुक पत्तियों के लिए यह 30° से 90° तक हो सकता है। जल में पूर्णतया निमज्जित रहने वाले पौधों की पत्तियों तथा जल के बीच स्पर्श कोण लगभग शून्य होता है अर्थात् उन पौधों की पत्तियाँ पानी से पूर्णतया भीगी रहती हैं।

एक ही प्रजाति के विभिन्न नमूनों की पत्तियों के लिए और एक ही पौधे के भिन्न भिन्न भागों के लिए भी स्पर्श कोण के मान भिन्न भिन्न हो सकते हैं। पटसन की पत्ती और जल के बीच का स्पर्श कोण 120° और उसके बीजपत्रों तथा जल के बीच स्पर्श कोण मात्र 80° होता है। इतना ही नहीं, एक पत्ती की ऊपरी और निचली सतहों के भीगने की प्रवृत्ति में बड़ा अन्तर दिखता है। स्वस्थ तथा प्रौढ़ पत्तियों के लिए स्पर्श कोण अधिक होता है और उसी पौधे की अपेक्षाकृत नयी और अधिक प्राचीन पत्तियों के लिए स्पर्श कोण कम होता है।

किसी पत्ती की भौतिक अवस्थाओं में परिवर्तन होने पर उस पत्ती तथा जल के बीच स्पर्श कोण में महत्वपूर्ण परिवर्तन दिखाई देते हैं। प्रायः देखा जाता है कि क्रमशः मुरझाती हुई पत्ती के लिए जल का स्पर्श कोण क्रमशः बढ़ता जाता है। उदाहरण के लिए जंगली सरसों की पत्ती यदि पौधे से अलग कर साढ़े तीन घंटों तक मुरझाने दी जाये तो उस पत्ती और जल के बीच स्पर्श कोण 28° से बढ़ता हुआ 45° तक पहुँच जाता है। गेहूँ की मुरझाती हुई पत्ती पर यही प्रयोग करने पर स्पर्श कोण 124° से 152° तक बढ़ जाता है। जंगली सरसों की कुछ अन्य प्रजातियों की पत्तियों का व्यवहार कुछ भिन्न होता है। इन पत्तियों को यदि तेजी से मुरझाने दिया जाये तो प्रथमतः स्पर्श कोण घटता और फिर बढ़ता जाता है। पौधे की सामान्य रूप से बढ़ती हुई पत्ती तथा जल के बल का स्पर्श कोण दिन के भिन्न भिन्न समयों पर अलग अलग आता है। सुबह छः बजे स्पर्श कोण महत्तम होता है जो शनैः शनैः घटता हुआ प्रायः नौ बजे न्यूनतम रह जाता है। सायं चार बजे यह पुनः बढ़ता हुआ द्वितीय महत्तम मान पर पहुँच जाता है और अन्ततः मध्यरात्रि के बारह बजे तक यह द्वितीय न्यूनतम मान धारण करता है। शायद यह परिवर्तन पत्तियों के ऊतकों के जलीय अंश में दैनिक परिवर्तन के फलस्वरूप होता है। किसी पत्ती के लिए स्पर्श कोण के इस परिवर्तन का परास 30° तक हो सकता है।

पौधों की भीगने की प्रक्रिया को भौतिक परिवर्तन किस प्रकार प्रभावित करते हैं, यह ज्ञात हो जाने के पश्चात् अब हम यह समझने का प्रयास करेंगे कि ये परिवर्तन क्यों होते हैं ? इस क्यों ? की व्याख्या करने हेतु हमें भीगने की इस घटना से सम्बंधित भौतिक कारणों और पत्तियों के पृष्ठों की प्रकृति पर विचार करना पड़ेगा। वास्तव में स्पर्श कोण का मान द्रव के अणुओं तथा पत्तियों की सतहों पर मुक्त रूप से प्रसरित रासायनिक समूहों (Chemical groups) के बीच लगने

वाले आसंजक बल पर निर्भर करता है। जिन पदार्थों के अणुओं में आवेश का वितरण एकसमान नहीं होता है उन्हें ध्रुवीय (Polar) अणु कहते हैं। जल के अणु ध्रुवीय होते हैं। इस प्रकार जल के अणु पत्ती के पृष्ठ पर वितरण ध्रुवीय रासायनिक समूहों के अणुओं द्वारा आकर्षित किए जाते हैं। परन्तु यदि पत्ती के पृष्ठ पर किसी अध्रुवीय रासायनिक समूह के अणु उपस्थित हैं तो जल के ध्रुवीय अणु उनकी ओर आकर्षित नहीं होते। उदाहरणार्थ मोम में पाये जाने वाले हाइड्रोकार्बन अणुओं की शृंखलायें अध्रुवीय होती हैं। अतः मोम से लेपित पृष्ठ पर जल का स्पर्श कोण 105° होता है। ऐल्कोहलों के उच्च सजात तथा वसीय अम्लों के अणु एक ओर को ध्रुवित होते हैं और जब ये ठोस अवस्था में आते हैं तो इनके अणुओं के अध्रुवित भाग ऊपर की ओर आ जाते हैं अतः उच्च ऐल्कोहल सजातों एवं वसीय अम्लों की चिकनी सतह और जल के बीच का स्पर्श कोण भी 105° होता है। यदि इन पदार्थों की ताजी कटी सतह पर पानी डालें तो स्पर्श कोण घटकर 50° रह जाता है। शायद इसका कारण यह है कि ठोस ऐल्कोहल या वसीय अम्ल की ताजी कटी सतह पर ध्रुवीय व अध्रुवीय दोनों प्रकार के रासायनिक समूह ऊपर आ जाते हैं।

पत्तियों की सबसे ऊपरी पर्त जो क्यूटिकल कहलाती है, क्यूटिन नामक पदार्थ से बनी होती है। क्यूटिन एक अक्रिय अविलेय पदार्थ है। इसी के साथ पत्ती में भिन्न भिन्न परिमाण में पैराफिन मोम, ऐल्कोहल और ऐसे ही मोम सदृश रासायनिक सरंचना वाले अन्य रासायनिक समूह वितरित रहते हैं। क्यूटिन अवयव पर स्पर्श कोण 30° से 85° तक परिवर्तित होते हैं। शायद क्यूटिन अणुओं के ध्रुवीय भाग ऊपर और अध्रुवीय भाग नीचे की ओर होते हैं अथवा इस प्रकार वितरित होते हैं कि वे इस ध्रुवीय भागों को आच्छादित नहीं करते। ध्रुवीय भाग ऊपर होने के कारण क्यूटिन के अणु इस प्रकार वितरित होते हैं कि वे इन ध्रुवीय भागों को आच्छादित नहीं करते। ध्रुवीय भाग ऊपर होने के कारण क्यूटिन के अणु जल के अणुओं को अपनी ओर आकृष्ट करते हैं जिससे स्पर्श कोण 30° से 85° तक परिवर्तित होता है। कुछ अन्य कारक भी हैं जो स्पर्श कोण के मान का निर्धारण करते हैं। कुछ पौधों में पत्तियों पर मोम की एक मोटी पर्त होती है। मोम की इस पर्त में अध्रुवित समूह ऊपर की ओर होते हैं अतः इनमें जल के स्पर्श कोण का मान पैराफिन मोम की ही तरह काफी अधिक होता है। कुछ प्रजातियों में यह मोम जैसी संरचना इतनी पतली होती है कि सूक्ष्मदर्शी से भी नहीं दिखती। कभी कभी वायुमंडल या जल में उपस्थित कतिपय कारक पत्तियों पर एकत्रित होकर स्पर्श कोण को घटा या बढ़ा देते हैं।

पत्तियों के भीगने की सीमा का निर्धारण करने में रासायनिक प्रकृति की ही भाँति भौतिक कारकों का भी बड़ा महत्व होता है। पत्तियों के ऊपरी आवरण की स्वच्छता भी भीगने की सीमा का निर्धारक तत्व है। पत्तियों की ऊपर सतह अधिकतर रुक्ष होती है। यदि बूँद और पत्ती के बीच वायु की कोई फिल्म नहीं है तो रुक्षता ध्रुवीय प्रेक्षित स्पर्श कोण पत्ती की रुक्षता के कारण उससे कम प्राप्त होगा जबकि स्पर्श कोण न्यून है। यदि पत्ती व जल के बीच वास्तविक स्पर्श कोण अधिक कोण है तो समतल की रुक्षता के कारण स्पर्श कोण का प्रेक्षित मान वास्तविक मान से कुछ अधिक प्राप्त होगा। यदि समतल व जल के बीच हवा की पर्त है तो प्रेक्षित स्पर्श कोण सदैव वास्तविक स्पर्श कोण से अधिक होगा। प्रेक्षित और वास्तविक स्पर्श कोणों का अन्तर वायु द्रव एवं द्रव ठोस के सम्पर्क तलों के क्षेत्रफलों के अनुपात पर निर्भर करता है। शावर प्रूफ कपड़ों, बत्तख के पंखों और कुछ पत्तियों में भीगने के प्रति जो उच्च प्रतिरोधकता का गुण होता है, मुख्य रूप से उसका कारण है रुक्षता, न कि किसी जलरोधी पदार्थ की इन वस्तुओं में उपस्थिति। गेहूँ की पत्ती से निष्कर्षित मोम व पानी के बीच स्पर्श कोण 105° होता है जबकि स्वयं गेहूँ की पत्ती पर जल का स्पर्श कोण 160° तक होता है। यह पत्ती की रुक्षता तथा पत्ती व जल के बीच वायु के स्तम्भन के कारण होता है।

पत्तियों में उपस्थित जलीय अंश किस प्रकार स्पर्श कोण को प्रभावित करता है ? पत्ती जब अपने

जलीय अंश को उत्सर्जित करती है तो इसके ऊतक संकुचित होते हैं जिससे पत्ती के ऊपरी आवरण में झुर्रियाँ आ जाती हैं। मुरझाती पत्ती की ये झुर्रियाँ कभी कभी सीधी आँख से भी देखी जा सकती हैं। झुर्रीदार पृष्ठ अधिक रुक्ष हो जाता है जिससे जल और मुरझाती पत्ती के बची स्पर्श कोण बढ़ जाता है।

तेजी से मुरझाती पत्ती पर स्पर्श कोण का पहले घटना, फिर बढ़ना भी स्पष्ट किया जा सकता है। पत्ती की ऊपरी त्वचा व आन्तरिक ऊतकों के बीच जल के अणुओं का विनिमय अत्यधिक मन्द गति से होता है। यदि पत्ती से जल का क्षरण तेजी से हो रहा है तो ऊपरी त्वचा पहले सिकुड़ेगी किन्तु नीचे से होने वाले जल के मन्द विनिमय के कारण ये झुर्रियाँ भर आयेंगी। बाद में जब पत्ती के आंतरिक ऊतकों में जल हानि के कारण संकुचन होने लगेगा तो पत्ती की ऊपरी त्वचा में स्थायी रूप से झुर्रियाँ आ जायेंगी अतः प्रथमतः स्पर्श कोण घटता हुआ फिर बढ़ेगा।

स्पर्श कोण के मान में होने वाले दैनिक परिवर्तन की भी व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है। अपरान्ह से स्पर्श कोण का महत्तम मान यह दर्शाता है कि अपरान्ह में पत्तियों का जलीय अंश घटता है जिससे इस समय पत्तियाँ कुछ अधिक झुर्रीदार और रुक्ष हो जाती हैं। सूर्यास्त के पश्चात् जड़ों द्वारा शोषित जल का संवहन पत्तियों तक होने से वाष्पोत्सर्जन के कारण हुई जल हानि की पूर्ति हो जाती है जिससे झुर्रियाँ घटने से पत्तियाँ चिकनी हो जाती हैं। मध्य रात्रि में पत्तियों की ऊपरी त्वचा चिकनी हो उठती है। मध्य रात्रि के बाद पत्ती के भीतरी ऊतकों में होकर जल धीरे धीरे ऊपर आता है जबकि पत्तियों के ऊपरी पृष्ठ में वाष्पोत्सर्जन अपेक्षाकृत तीव्र होता है अतः मध्य रात्रि से सूर्योदय के बीच एक बार पुनः पत्तियों पर रुक्षता बढ़ती है जिससे स्पर्श कोण बढ़ता है। सूर्योदय के पश्चात् पुनः यही क्रिया उलटकर प्रारम्भ हो जाती है क्योंकि सूर्योदय के बाद पत्ती की सतह से पुनः जल की हानि तीव्र हो उठती है।

पत्तियों के भीगने का अध्ययन वानस्पतिक दृष्टिकोण से अत्यधिक महत्वपूर्ण है। पत्तियों पर फैला जल प्रकाशसंश्लेषण एवं श्वसन क्रियाओं को बाधित कर सकता है तथा पत्तियों के भीतरी ऊतकों से महत्वपूर्ण रासायनिक यौगिक बहकर बाहर निकल सकते हैं। ये घटनायें पौधे के जीवन पर निर्णायक प्रभाव डाल सकती हैं। स्पर्श कोणों के माध्यम से हमें पत्तियों की ऊपरी रचना के बारे में महत्वपूर्ण सूचनाएँ प्राप्त होती हैं। स्पर्श कोणों का मान पौधों पर कीटनाशी रसायनों के छिड़काव में सहायक हो सकता है। छिड़काव के तकनीक में भी स्पर्श कोणों का मान महत्वपूर्ण करने में सहायक हो सकता है। अतः पत्तियों के भीगने की प्रक्रिया का विस्तृत ज्ञान सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक दोनों दृष्टिकोणों से अत्यन्त आवश्यक है।

रामलीला मैदान, जालगंज
रायबरेली–229206

सांख्यिकी के जन्मदाता : सर रोनाल्ड फिशर

डॉ० महेन्द्र कुमार शर्मा

सांख्यिकी के जन्मदाता सर रोनाल्ड एलिमूर फिशर का जन्म 17 फरवरी 1890 में ईस्ट फिन्चले, लन्दन में एक सम्पन्न परिवार में हुआ था। फिशर को अपनी माता से दो चीजें विरासत में मिली थीं– बुद्धिमत्ता एवं खराब नेत्रदृष्टि। फिशर की प्रारम्भिक शिक्षा गाँव के स्कूल में हुई। प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त करके फिशर ने प्रसिद्ध स्कूल हैरो में प्रवेश लिया। हैरो से पढ़ाई समाप्त करके सन् 1912 में फिशर ने कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय से ट्राईपोज परीक्षा पास की और आप्टिकल के प्रश्नपत्र में रैंगलर के साथ विशिष्ट योग्यता प्राप्त की। फिशर को कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय ने भौतिक विज्ञान के अध्ययन करने के लिए एक साल के लिए छात्रवृत्ति प्रदान की। कैम्ब्रिज में उन्होंने प्रोफेसर जेम्स जीन्स के साथ सांख्यिकी यांत्रिकी और प्रोफेसर एफ.जे.एम. स्टूटेन के साथ क्वाण्टम सिद्धान्त का अध्ययन किया। कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय से शिक्षा समाप्त करने के बाद फिशर को जीविका चलाने के लिए कोई नौकरी नहीं मिली।

फिशर छात्र जीवन से ही सृजन विज्ञान, विज्ञान सोसाइटी से जुड़े हुए थे तभी उन्होंने दो शोधपत्र प्रकाशित किए थे। वास्तव में उनका झुकाव सृजन विज्ञान एवं सांख्यिकी में ही था। इसलिए वे प्रसिद्ध गाल्टन प्रयोगशाला में कार्य करना चाहते थे। उस प्रयोगशाला में कार्य करने के लिए उनको प्रयोगशाला में अध्यक्ष प्रोफेसर पियरसन का विश्वास जीतना जरूरी था जो कि कठिन कार्य था। अन्त में उनको मरकेन्टाइल एवं जनरल इन्वेस्टमेंट कम्पनी लन्दन में सांख्यिकी कार्यों से सम्बंधित एक नौकरी मिल गई, परन्तु फिशर को अपने ढीले ढाले पहनावे के कारण, जो कम्पनी के निदेशक को पसन्द नहीं था, यह नौकरी छोड़नी पड़ी।

कैम्ब्रिज छोड़ने के छः साल तक फिशर को कोई भी ऐसी नौकरी नहीं मिली जहाँ पर उनकी योग्यता का उपयोग हो सकता था। सन् 1917 में उन्होंने एलीन नाम की एक लड़की से शादी की तथा शोधकार्यों के लिए विश्वप्रसिद्ध रोथमस्टेड स्टेशन के निदेशक सर जान रसेल ने सन् 1919 में उनको सांख्यिकी के अस्थायी पद पर कार्य करने के लिए प्रस्ताव भेजा। इस प्रस्ताव के कुछ सप्ताह बाद प्रोफेसर पियरसन ने गाल्टन प्रयोगशाला में कार्य करने के लिए सशर्त प्रस्ताव भेजा कि वह जो निश्चित करेंगे वही फिशर पढ़ायेंगे। फिशर ने प्रोफेसर पियरसन के प्रस्ताव को ठुकराकर रोथमस्टेड एक्सपेरीमेन्टल स्टेशन पर ही कार्य करना उचित समझा।

उन्होंने 6 वर्षों तक सांख्यिकी के महत्व व उद्देश्य को नवीन परिवेश में परिभाषित किया और महत्वपूर्ण स्टुडेन्ट 'टी' परीक्षण के सूत्र में सुधार किया जिसका प्रतिपादन रसायनशास्त्री गौसेट ने किया था।

फिशर ने रोथमस्टेड एक्सपेरीमेंटल स्टेशन पर कार्य करते हुए कृषि शोध के परीक्षणों को एक नई दिशा दी। कृषि प्रयोगों के लिए उन्होनें मूलभूत सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया। इसी स्टेशन पर कार्य करते हुए उन्होंने अपनी प्रथम पुस्तक 'स्टेटिस्टिकल मेथड फार रिसर्च वर्कर' सन् 1923–24 में लिखी। सन् 1926 में फिशर को डाक्ट्रेट की उपाधि प्राप्त हुई। फिशर सांख्यिकी में शोध के साथ साथ जेनेटिक्स में भी रुचि रखते थे। उन्होंने हारपेन्डेन में अपने निवास पर चूहों की प्रजातियों पर शोध करके 'फंडामेंटल थ्योरम आफ नैचुरल सलेक्शन एवं थ्योरी आफ इवाल्यूशन आफ डामिनेन्स' के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया।

सन् 1928 में फिशर को पापुलेशन आफ जेनेटिक्स में शोधकार्य करने के लिए वेल्डन मेमोरियल

मेडल के लिए और सन् 1929 में गणितज्ञ के रूप में रायल सोसाइटी के फेलो के लिए चुना गया। सन् 1933 में उनको विश्वविद्यालय कालेज लन्दन में एप्लाइड सांख्यिकी विभाग की गाल्टन प्रयोगशाला को सुजनन विज्ञान विभाग में परिवर्तित करके गाल्टन प्रोफेसर के पद पर नियुक्त किया गया। सन् 1937 में फिशर ने गाल्टन प्रयोगशाला में सीरोलाजिकल यूनिट की स्थापना की जो आगे चलकर एक संस्थान में परिवर्तित हो गई। सन् 1943 में फिशर ने 'रिसस एलेलोमोरफिस' के सिद्धान्त को प्रतिपादित किया। इस सिद्धान्त से रक्त समूह पर कार्य करने वाले हजारों वैज्ञानिकों को 'R_H फैक्टर' समझने का अवसर मिला।

द्वितीय विश्वयुद्ध में उनका बड़ा पुत्र हवाई जहाज दुर्घटना में दिवंगत हो चुका था। बड़े पुत्र की मृत्यु का उनको काफी सदमा लगा, परन्तु वे अपने शोधकार्यों से विचलित नहीं हुए।

सन् 1943 में उन्होंने कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में आर्थर बेलफोर प्रोफेसर आफ जेनेटिक्स का पद सँभाला। यहाँ पर उन्होंने जोरनल आफ हेरीडिटी और जोरनल आफ इयुजिनिक्स का सम्पादन किया और थियरी आफर इनब्रीडिंग पर एक किताब लिखी।

फिशर को विश्व के विभिन्न विश्वविद्यालयों, सोसाइटियों और एकाडिमियों द्वारा समय समय पर सम्मानित किया गया। उनके शिष्य अमरीका, आस्ट्रेलिया, इंगलैंड के विभिन्न विश्वविद्यालयों में उच्च पदों पर आसीन थे। फिशर का भारत से भी विशेष लगाव था। महान सांख्यिकीविद डॉ0 प्रशान्त चन्द्र महालनोबिस समय समय पर उनको विश्वविख्यात भारतीय सांख्यिकी संस्थान, कलकत्ता में आमंत्रित करते थे। अन्तिम बार फिशर उक्त संस्थान में सन् 1962 में आये थे।

फिशर को सन् 1955 में सेवानिवृत्त होना था परन्तु कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के बोर्ड ने उनकी सेवानिवृत्ति की आयु दो साल बढ़ा दी। सन् 1959 में उनके शिष्य डॉ0 ई.ए. कार्निस ने उनको छः महीने के लिए आस्ट्रेलिया बुला लिया। फिशर को आस्ट्रेलिया इतना अच्छा लगा कि उन्होंने डॉ0 कार्निस से अपने जीवन के बाकी दिन आस्ट्रेलिया में बिताने की इच्छा व्यक्त की। इस पर डॉ0 कार्निस ने उनको सी.एस.आई. आर.ओ. का जीवन पर्यन्त रिसर्च फेलो मनोनीत करवा दिया।

सन् 1962 में फिशर ने भारतीय सांख्यिकी संस्थान, कलकत्ता से लौटने पर अपना मेडिकल परीक्षण कराया। परीक्षण में उनको अंतडी का कैंसर पाया गया। एडिलेड में ही डॉ0 कार्निस ने उनका आपरेशन करवाया। सफलतापूर्वक आपरेशन के बाद उनको इमबोलिज्म का झटका लगा। इस झटके को वे सहन न कर सके और महान सांख्यिकीविद सर रोनाल्ड फिशर सदा के लिए मृत्यु की गोद में सो गये।

उपलब्धियां एवं सम्मान

1. डी.एस.सी. (एडीलेड, एमीस, शिकागो, हार्वर्ड, लीड्स, लन्दन विश्वविद्यालय एवं भारतीय सांख्यिकी संस्थान, कलकत्ता)।

2. एल.एल.डी. (कलकत्ता, ग्लासगो विश्वविद्यालय)।

3. आनरेरी रिसर्च फेलो, डिवीजन आफ मैथेमैटिकल स्टेटिस्टिक्स, सी.आई.आर.डी.ओ. यूनिवर्सिटी आफ एडिलेड।

4. फारेन एसोसिएट आफ फारेन मेम्बर, यूनाइटेड स्टेट्स नेशनल एकडमी आफ साइंसेज, रायल स्वीडिश एकेडमी आफ साइंसेज।

5. मेम्बर, आनरेरी मेम्बर और आनरेरी प्रेजीडेन्ट रासल डेनिस एकेडमी आफ नैचुरल साइंस, अमेरिकन स्टैटिसटिक्स एसोसिएशन, इंटरनेशनल स्टैटिसटिक्स इंस्टीट्यूट।

सर रोनाल्ड फिशर ने 6 अंतर्राष्ट्रीय स्तर की किताबें लिखीं। उनका 294 शोधपत्रों का समूह जे.एच. बेनिट, एडीसन यूनिवर्सिटी आफ एडीलेड (1971–74) में पाँच खंडों में प्रकाशित हुआ।

सह प्राध्यापक, सांख्यिकी विभाग
नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय
कुमारगंज, फैजाबाद–224229 (उत्तर प्रदेश)

बच्चों के लिए जरूरी है स्तनपान

डॉ० उमा वर्मा

जब भी कोई भूखा बच्चा बुरी तरह रोता है, तो उस समय वह केवल मुँह से नहीं रो रहा होता है, बल्कि उसके शरीर का हर अंग रो रहा होता है, हाथ पाँवों को जोर जोर से पटकना व तड़पना, ये सब उसी रोने के लक्षण होते हैं। यदि ध्यान से उसका रोना सुनें तो लगेगा कि उसकी वह भयानक बेचैनी और रुलाई अपनी माँ के सामने गिड़गिड़ा रही है कि मम्मी, अब तो मान जाओ न, मुझको अपना दूध पिलाओ न !

माँ का दूध मुँह में जाते ही बच्चा एकदम चुप हो जाता है, मानो उस पर किसी ने जादू कर दिया हो, तब उसके चेहरे पर परम शान्ति होती है, आँखें बंद हो जाती हैं।

परन्तु दुःख की बात है कि आज की अल्ट्रामॉडर्न माँ बच्चों को उनके इस अधिकार से वंचित रख रही हैं, जो एक तरह से अन्याय है। ऐसा करने के लिए महिलाओं ने कई सुखद भ्रम पाल रखे हैं, जिनके चलते वे शिशु को स्तनपान कराना अच्छा नहीं समझतीं, इस बात का खामियाजा उस शिशु को जिंदगी के कई आरंभिक वर्षों तक भुगतना पड़ता है। बहुत सारी महिलाएँ तो अपनी सुदरता और शारीरिक गठन के प्रति अधिक सचेत होने के कारण स्तनपान कराना अच्छा नहीं समझतीं। कुछ दूसरी महिलाएँ आज की तेज गतिवाली जिंदगी में नौकरी तथा दूसरी महिलाओं से आगे निकलने की होड़ में अपने बच्चे को उसके हक से बेदखल कर देती हैं, पहले ऐसा सिर्फ पश्चिमी देशों में होता था। अब यह सब हमारे यहाँ भी हो रहा है। कई बार तो बच्चे को जन्म के पहले छह महीने तक भी माँ का दूध पर्याप्त मात्रा में नहीं मिल पाता।

अमेरिका के शिशु रोग विशेषज्ञों का कहना है कि नवजात शिशु के लिए पहले छह महीनों में माँ का दूध अमृत से भी बढ़ कर होता है। वह दूध न सिर्फ उसके अन्दर रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाता है बल्कि उसके मस्तिष्क के विकास के लिए भी बेहद आवश्यक होता है। रोचेस्टर यूनिवर्सिटी के शिशु रोग विशेषज्ञ डॉ0 रूथ लौरेंस ने अपने शोध से यह निष्कर्ष निकाला है कि शिशु के लिए माँ के दूध से बढ़ कर अन्य कोई खुराक नहीं है। उनके अनुसार जीवन के पहले वर्ष में ही बच्चे का मस्तिष्क आकार में दोगुना हो जाता है, और ऐसा सिर्फ माँ के दूध से ही सम्भव होता है। यदि बच्चे को माँ का दूध पर्याप्त मात्रा में नहीं मिले, तो मस्तिष्क का विकास अवरुद्ध हो सकता है।

इसी संबंध में अमेरिकी रिसर्च स्कॉलरों ने चार हजार अमेरिकी महिलाओं को अध्ययन का विषय बनाया, उनमें से आधी से अधिक महिलाओं ने शिशु के जन्म के आरंभिक महीनों में ही स्तनपान कराया था, जबकि उनमें से नब्बे प्रतिशत महिलाओं ने शिशु के छह महीने का होते होते अन्य खाद्य पदार्थ देने शुरू कर दिये थे।

इन अध्ययनों से यह सिद्ध हुआ कि शिशु को स्तनपान कराने से उसकी रोगों से लड़ने की क्षमता में वृद्धि होती है, साथ ही हैजा, पेचिश, मोटापा तथा अन्य घातक रोगों का भी खतरा बहुत कम हो जाता है। जिन शिशुओं ने लगातार छह महीने से ज्यादा समय तक माँ का दूध पिया था उनका आई क्यू बड़े होने पर उन शिशुओं से ज्यादा होता है जिन्हें अपेक्षाकृत माँ का दूध बहुत कम पीने को मिला होता है।

व्याख्याता-गृह विज्ञान
कालू राम मोदी मेमोरियल
वनांचल कालेज, गिरिडीह

मछलियों में बच्चों की देखभाल

अमिता सक्सेना

मनुष्यों की तरह मछलियों में भी अपने बच्चों को पालने व संरक्षण देने की प्रवृत्ति होती है। इसमें नर या मादा अथवा दोनों मिलकर घोसला बनाते हैं।

डारटर (ईथियोस्टोमा), सनफिश, सीचिलिड्स आदि मछलियों का नर एक छिछला बेसिन जैसा घोंसला पानी की तली में बनाता है और चारों ओर से कंकड़, पत्थर, सख्त टहनी आदि भी हटा देता है। इसी घोंसले में नर, मादा के दिए अंडों का निषेचन करता है और निषेचित अंडों की देखभाल व पहरा देता है जब तक बच्चे बाहर नहीं आ जाते हैं।

सालमोनिडी फैमिली में मादा तली में दरार बनाती है और इसमें अंडे देकर उन्हें महीन–महीन कंकड़ों से ढककर रखती है। ऐरियस आस्ट्रेलिस अपने अंडे गोल रेतीले गड्ढों में देती है (यह गड्ढे नदी की तली में ही बनाती है) परन्तु बाद में नर या मादा में से कोई भी विशेष देखभाल अपने बच्चों की नहीं करता है।

अफ्रीका की फेफड़े वाली प्रोटोप्टैरस मछली नदियों के किनारे वाली गीली मिट्टी में घर बनाती है। इसमें नर गहरे गड्ढे के रूप में घोंसला बनाता है और जब बच्चे अंडो से बाहर नहीं आ जाते देखभाल करता है तथा धीरे धीरे हिलकर हवा करता है। लैपिडोसिस मछली का नर अपने पैल्विक फिन के ऊपरी धागे समान प्रचुर रक्तवाहिनियों वाले भाग से आक्सीजन को पास के जलीय वातावरण में खींचता है।
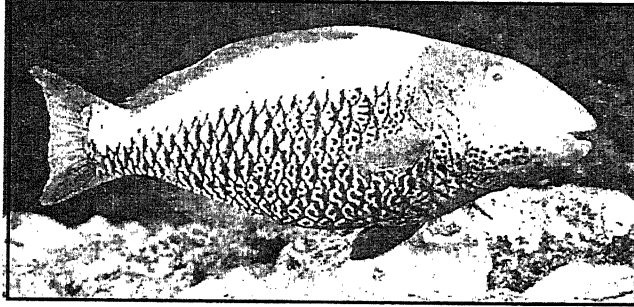
ऐमिया मछली जलीय पत्तियों से नर घोंसला बना कर अपने बच्चों की देखभाल करता है।

तीनों काँटों वाली स्टीकल बैक मछली (गैसटिरोसटियस ऐक्युलिरेटस) का नर कोर्टशिप से पहले ही बड़ा घोंसला बनाता है। यह जलीय पौधों के बीच जहाँ पानी नियमित रूप से परन्तु धीरे धीरे आता है, कुछ जलीय पत्तियों की सहायता से घोंसला बनाता है। नर घोंसले की देखभाल करता है और बढ़ते भ्रूण व हैचलिंग की हवा करता है तथा पानी के बहाव को घोंसले की तरफ निर्देशित करता है। कुछ समय बाद नर हवा करना बन्द कर देता है व बच्चों को इधर उधर जाने नहीं देता है।

पन्द्रह काँटे वाली स्टीकल बैक (स्पाईनैचिया) एक घोंसला समुद्री पौधों से बनाती है। इसके भी गुर्दे से चिपचिपा पदार्थ निकलता है और जो गोल नाशपाती के आकार का घोंसला बनाने में सहायक होता है।

ऐनाबैन्टिड्स में घोंसला हवा के बुलबुले और म्यूकस की सहायता से बनता है। वे सब जुड़कर एक फ्रेम बनाते हैं जो तैरता रहता है। यह गुम्बद के आकार या चपटा होता है। बैटा मछली में नर अपने मुँह में

शेष पृष्ठ 32 पर

पुष्पी पादपों का उद्भव : नई खोज

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव
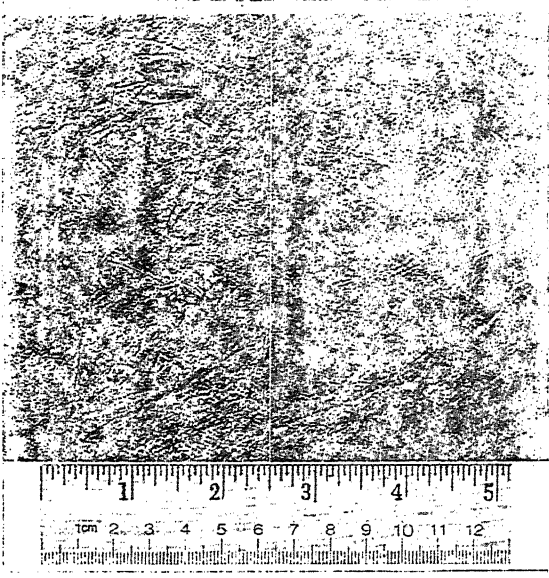
सबसे प्राचीन पुष्पी पादप का जीवाश्म

अभी पिछले दिनों की बात है। मुझसे मेरे बी. एस.सी. तृतीय वर्ष के विद्यार्थी ने पूछा कि सबसे पहला आवृतबीजी पादप (एन्जियोस्पर्म) कौन सा है ? मैं तत्काल उसे कोई उत्तर न दे सका, किन्तु बाद में बताने का आश्वासन दिया। मेरी समझ में प्रश्न का कोई समुचित उत्तर नहीं आ रहा था। इस संबंध में मेरी सहायता मेरे सहयोगी डॉ0 एच.एन. श्रीवास्तव ने की। उन्होंने बताया कि प्रथम (प्राचीनतम) पादप आर्किऐन्थस (Archaeanthus) नामक आवृतबीजी पादप (जीवाश्म) है।

इसी बीच मेरे हाथ 'डाउन टू अर्थ' (Down To Earth) नामक पत्रिका का मई 31, 2002 का अंक लग गया। पृष्ठ 32–33 पर 'ओरिजिन ऑव ब्यूटी' (Origin of Beauty) शीर्षक से एक छोटा सा लेख मिला जिसमें आवृतबीजी पादपों के पूर्वज के विषय में एक नये आवृतबीजी पादप की खोज का उल्लेख है।

आवृतबीजी पादपों का उद्‌भव सदैव से विवादास्पद रहा है। फिर भी अभी तक ज्ञात साक्ष्यों के आधार पर वनस्पतिविज्ञानियों ने साधारणतया यह मान लिया था कि मध्य क्रिटेशियस (Mid Cretaceous) काल में पाया गया एक पुष्पी पादप आवृतबीजी पादपों में सबसे प्राचीन है। इस पुष्पी पादप के जीवाश्म कनाडा में मिले थे। किन्तु पुरावैज्ञानिकों ने पिछले वर्ष उत्तरी चीन में एक अन्य पुष्पी पादप के जीवाश्म ढूँढ निकाला जो कनाडा में मिले जीवाश्म से भी पुराना है।

ये नये जीवाश्म उत्तरी चीन में ऐसे स्थान से प्राप्त हुए हैं जहाँ ज्वालामुखी राख की एक पर्त जमी हुई है। अनुसंधानकर्ता अमेरिका के गेनेसविले में स्थित फ्लोरिडा विश्वविद्यालय से संबद्ध हैं। वैज्ञानिकों ने ये जीवाश्म बालुका के रंग वाले ऐसे प्रस्तर खण्ड से प्राप्त किये जिसे उन्होंने एक चट्टान से निकाला था। सूक्ष्म अध्ययन से ज्ञात हुआ कि इन जीवाश्मों को दो अलग अलग पादप जीवाश्म समूहों में रखना चाहिए। इस प्रकार अंततः उन्होंने इनके वंश (Genus) का तो एक ही नाम रखा किन्तु दो जातियों (Species) में विभाजित किया। वंश का नाम आर्किफ्रक्टस (Archaefructus) और दोनों जातियों के नाम आर्किफ्रक्टस

लिआवोनिनजेंसिस और आर्किफ्रक्टस सिनेंसिस (Archaefructus liaoningensis and Archaefructus sinensis) रखे गए। चूँकि आवृतबीजी पादपों के सभी कुलों के जीवाश्म पादप भिन्न थे इसलिए इन्हें नए आर्किफ्रक्टेसी (Archaefructaceae) कुल में रखा गया।

पुष्पी पादपों के उद्‌भव को लेकर वनस्पति विज्ञानी सदैव दुविधा की स्थिति में रहे हैं क्योंकि नई नई खोजों के आधार पर नए विचार सामने आते रहे। इसका एक सुखद परिणाम यह हुआ कि इस विषय में वैज्ञानिकों की रुचि आज भी बनी हुई है।

अमेरिका के कार्नेल विश्वविद्यालय के वनस्पति विज्ञानी विलियम क्रेपेट (William Crepet) मानते हैं कि यह नया पादप जीवाश्म आर्किफ्रक्टस अन्य सभी पुष्पी पादपों का प्रतिनिधि तो है ही, साथ ही इसमें पुष्पी पादपों के पूर्वज होने के भी अनेक लक्षण विद्यमान हैं। अतएव अब तक खोजे गये जीवाश्मों में यह अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

इस तथ्य में किंचित मात्र भी संदेह नहीं कि मानव आज अपनी मूल आवश्यकताओं, भोजन और रेशों, के लिए पुष्पी पादपों पर ही निर्भर है। यह भी सच है कि विश्व की विशाल और लगातार बढ़ती हुई जनसंख्या मूल रूप से पादपों पर ही टिकी हुई है। शोधकर्ताओं में से एक डेविड डिल्चर (David Dilcher) का मत है कि इन जीवाश्मों के अध्ययन से पुष्पी पादपों के आपसी संबंधों पर भी नई रोशनी पड़ेगी। वह दिन दूर नहीं जब वैज्ञानिक इन जीवाश्मों की सहायता से पुष्पी पादपों के विकासात्मक इतिहास की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे। अर्थात् पुष्पी पादपों का जन्म कब, कहाँ हुआ और किस तरह क्रमिक विकास की सीढ़ी दर सीढ़ी चढ़ते हुए वे आज की वर्तमान स्थिति को प्राप्त कर सके हैं और सारे संसार में छा गए हैं। आज इस धरती पर पुष्पी पादपों का ही दबदबा है, किन्तु भविष्य में इनका क्या स्वरूप होगा, यह भविष्य के गर्भ में है।

आर्किफ्रक्टस के जीवाश्म जिस प्रस्तर खण्ड में पाए गए हैं उसके अध्ययन से ज्ञात हुआ कि ये प्रस्तर खण्ड 124.6 मिलियन वर्ष पुराने हैं। यह समय क्रिटेशियस काल के प्रारंभ का समय है। यह वह समय है जब इस धरती पर डाइनोसोरों (Dianosaours) का साम्राज्य था पुष्पी पादपों के इस धरती पर जन्म का। अब तक प्राप्त साक्ष्यों में सबसे पुराना साक्ष्य है आर्किफ्रक्टस का जीवाश्म। वैसे इस प्रकार के स्थानों में पुष्पी पादपों के कुछ अन्य जीवाश्म भी मिले हैं किन्तु ये अपूर्ण दशा में हैं। आर्किफ्रक्टस में जड़, पत्ती, प्रजनन अंग विद्यमान हैं। हाँ, फूलों की पंखुड़ियाँ (Petals) नहीं मिलीं किन्तु बीज आवरण से ढँके पाये गए अर्थात् कच्चे फलों के अंदर मिले। इन जीवाश्मों के अध्ययन से इनकी एक और विशेषता उभर कर सामने आई वह है इनका जलीय वातावरण। प्राचीन काल में जब ये पादप जीवित दशा में धरती पर पाये जाते रहे होंगे तो उनका पर्यावरण निश्चित रूप से जलीय रहा होगा अर्थात् अपने भार को धरती पर साधे रहने की क्षमता का इनमें अभाव रहा होगा। चिड़ियों के पंखों के सदृश्य इनकी पत्तियों की संरचना भी इसके जलीय पादप होने का प्रमाण है।

शोधकर्ताओं के अनुसार ये पादप उथली झीलों में पनपते रहे होंगे, जहाँ डाइनोसोरों, घड़ियालों (Crocodiles) ,कछुओं (Turtles) और अनेक प्रकार की मछलियों (Fishes) की बहुतायत रही होगी। जैसा कि पहले कहा गया है कि इनमें पंखुड़ियों का अभाव था। यह चौंकाने वाली बात है। किन्तु बीजों का कच्चे फलों में पाया जाना इसे पुष्पी पादप सिद्ध करने के लिए यथेष्ट प्रमाण है। इसमें संदेह नहीं कि बीज गर्भ केसर या अंडप (Carpels) से ढँके हुए मिले हैं। इस खोज से एक और तथ्य भी प्रमाणित होता है कि इस धरती पर पाये जाने वाले समस्त पुष्पी पादप नाजुक जलीय पादपों की संतानें हैं।

मैं इस छोटे से आलेख का समापन प्रसिद्ध भारतीय वैज्ञानिक वी. पुरी के पुष्पी पादपों के उद्‌भव संबंधित एक व्याख्यान के वाक्य से करना चाहता हूँ। उन्होंने कहा था– "इट इज़ आलवेज़ बेटर टु ट्रैवेल दैन टु एराइव" (It is always better than to arrive)।

वाई–II सी, 115/6
त्रिवेणीपुरम, झूँसी, इलाहाबाद

भारत में मानव मस्तिष्क के प्राचीनतम अवशेष

डॉ० विजय कुमार उपाध्याय

हाल ही में एक भारतीय वैज्ञानिक ने दावा किया है कि उसने एक प्रागैतिहासिक मानव शिशु की जीवाश्मित खोपड़ी ढूँढ निकाली है। यह अब तक खोजे गये मानव पूर्वजों के अवशेषों में सबसे प्राचीन है। परन्तु इस खोज ने अनेक वैज्ञानिकों को एक नये विवाद में उलझा दिया है। केरल विश्वविद्यालय के पुरातत्व विभाग में कार्यरत डॉ0 प्रभाकरण राजेन्द्रन ने पांडिचेरी के निकट एक स्थान पर लैटेराइट नामक शैल में मानव शिशु की अश्मीभूत खोपड़ी को खोजने का दावा किया है जिसकी आयु लगभग एक लाख सत्तासी हजार वर्ष बतायी गयी है। परन्तु पुराजीववैज्ञानिकों का कहना है कि डॉ0 प्रभाकरन राजेन्द्रन के दावे के समर्थन हेतु वैज्ञानिक साक्ष्यों का अभाव है।

चट्टान से जीवाश्मित खोपड़ी को निकालने में खोपड़ी कहीं टूट न जाय इस डर से सावधानी बरतने हेतु डॉ0 प्रभाकरन राजेन्द्रन ने जीवाश्मित खोपड़ीयुक्त संपूर्ण चट्टान को उठा लिया तथा उसे अस्पताल ले जाकर कंप्यूटरयुक्त एक्सरे स्कैन से जाँचा। इस जाँच से उस खोपड़ी की संरचना तथा संघटन के संबंध में काफी उपयोगी जानकारी प्राप्त हुई। इस जाँच से संबंधित पूरी रिपोर्ट इंडियन एकेडमी ऑफ साइंसेज द्वारा प्रकाशित 'करेंट साइंसेज' नामक पत्रिका में कुछ समय पूर्व प्रकाशित की गयी है। इस रिपोर्ट में यह बताया गया है कि मस्तिष्कयुक्त यह जीवाश्मित खोपड़ी सिर्फ पाँच महीने की अवस्था के एक शिशु की है जिसके दूध के दाँत भी अभी तक नहीं निकले थे। परन्तु मसूढ़ों में इन दाँतों की उपस्थिति के प्रमाण एक्सरे स्कैन में स्पष्ट रूप से मिले। यहाँ तक कि इन दाँतों की गिनती भी कर ली गयी है।

उपर्युक्त जीवाश्मित खोपड़ी की जो आयु निर्धारित की गयी है उसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि यह खोपड़ी या तो होमोएरेक्टस जाति की थी अथवा होमोसेपियन्स जाति की। यह जाति आधुनिक मानव के उद्भव एवं विकास के ठीक पहले पृथ्वी पर अस्तित्व में थी। हालाँकि संसार में अनेक स्थानों पर इससे भी अधिक पुरानी कई जीवाश्मित खोपड़ियाँ पायी गयी हैं, परन्तु डॉ0 प्रभाकरन राजेन्द्रन के द्वारा जो खोज की गयी है वह पहली ऐसी जीवाश्मित खोपड़ी है जिसमें मस्तिष्क भी उपस्थित एवं पूर्णतः सुरक्षित है। यह खोज न सिर्फ पुरातत्व के क्षेत्र में अपितु पुराजीव विज्ञान (पैलियोंटोलौजी) के क्षेत्र में भी एक क्रान्तिकारी खोज है।

अनेक पुराजीव वैज्ञानिकों ने डॉ0 प्रभाकरन राजेन्द्रन द्वारा किये गये दावे पर शंका व्यक्त की है। ऐसे ही पुराजीव वैज्ञानिकों में एक प्रमुख नाम है डॉ0 अशोक साहनी का जो पंजाब यूनिवर्सिटी चंडीगढ़ में 'सेंटर फार ऐडवांस्ड स्टडी इन जियोलौजी' विभाग में कार्यरत हैं। उनके मतानुसार लैटेराइट नामक चट्टान में जीवाश्म की उपस्थिति असंभव मालूम पड़ती है। साथ ही पत्थर के भीतर छिपे किसी पदार्थ का एक्स किरणों के प्रहार द्वारा पता लगाना संतोषजनक विधि नहीं मानी जा सकती। इसके लिए उन्हें खोपड़ी का कुछ अंश बाहर निकालना होगा। डॉ0 प्रभाकरन राजेन्द्रन का कहना है कि जीवाश्मित खोपड़ी से डी.एन.ए. निकालने के प्रयास किए जा रहे हैं।

440 कोओपरेटिव कालोनी
बोकारो स्टील सिटी, झारखण्ड

वैदिककालीन सरस्वती की खोज

शिवेन्द्र कुमार पांडे

पिछले कुछ दशकों में आधुनिक सुदूर संवेदन विज्ञान के विकास में अत्यन्त असाधारण प्रगति हुई है और शायद ही कोई कार्य क्षेत्र इससे अछूता हो, जहाँ इसका उपयोग नहीं हो रहा है। इस विधि द्वारा लिए गए उपग्रह चित्रों में अंकित आँकड़ों की व्याख्या करने पर भारतीय वैज्ञानिकों का मन होने लगा कि उत्तर–पश्चिम भारत में वैदिक काल की सरस्वती नदी का भूमिगत प्रवाह वर्तमान में भी सक्रिय रूप से विद्यमान हो सकता है, विशेषकर इसलिए कि इस नदी का उद्‌गम स्थल हिमानियों से आच्छादित (ग्लेस्टॉल भरे जल के समृद्ध भंडार) हिमालय पर्वतों में हैं, जहाँ पारिस्थितिकीय संतुलन अभी भी मूलभूत रूप में विद्यमान है।

उल्लिखित व्याख्या के समर्थन में भारतीय वैज्ञानिकों को 1987 में एक अप्रत्यक्ष भौतिक प्रमाण भी मिला है– उदयपुर के समीप हिन्दुस्तान जिंक लिमिटेड की बंद पड़ी माटुन खान क्षेत्र में 20 मीटर गहराई पर विद्यमान, मोहनजोदड़ो व हड़प्पा काल की जलभरी पुरानी गुफाओं में 'स्नोट्राउट मछली' की उपस्थिति, जो हिमालय की तीव्र धारा वाले ठंडे पानी में पनप कर विकास की ओर निरन्तर अग्रसर होती है। इन गुफाओं में मिली एक मछली के वैज्ञानिक परीक्षण से ज्ञात हुआ कि हजारों वर्षों से एक छोटे स्थान पर जीवनयापन के कारण उसमें आकृतिक परिवर्तन हो चुका था, लेकिन जीन्स विश्लेषण से स्पष्ट हो गया कि वह स्नो–ट्राउट मछली थी।

सरस्वती नदी की लुप्त हो गई पुरानी प्रवाह पट्‌टी के वास्तविक भूमिगत भ्रमण मार्गों की पहचान स्थापित करने का कार्य भारतीय विशेषज्ञ हाथ में ले चुके हैं, क्योंकि वर्तमान में अदृश्य, ये यात्रा पथ, भूजल भंडारों का विशाल चिरस्थायी स्रोत हो सकते हैं। भारतीय विशेषज्ञों को अपने इस प्रयास में सफलता भी मिलने लगी है।

हाल के वर्षों में पाकिस्तान को भी अप्रत्याशित रूप से विलुप्त सरस्वती नदी मार्ग में समृद्ध भूमिगत जल भण्डारों की उपस्थिति के प्रमाण सिंधु की खाड़ी में मिले हैं। पाकिस्तानी विशेषज्ञों के अनुसार इस नदी के भूमिगत यात्रा मार्ग में उपलब्ध जल भंडार 16 लाख लोगों के लिए 125 वर्षों तक जल आपूर्ति कर सकते हैं। पाकिस्तान को इस रहस्य का ज्ञान तब हुआ, जब जर्मन वैज्ञानिकों के सहयोग से उसने सिंधु खाड़ी क्षेत्र में सैनिकों के लिए जल आपूर्ति की स्थाई व्यवस्था परियोजना क्रम के अंतर्गत वेधनछिद्रों का निर्माण किया। इस प्रकार कई छिद्रों के निर्माण पश्चात् जब उन सभी में उपलब्ध जल के गुणों की जाँच की गई, तो ज्ञात हुआ कि एक विशिष्ट रेखा रूप लिए लम्बे क्षेत्र में मीठा जल (पीने योग्य) उपलब्ध है, लेकिन इस रेखा के अगल बगल/दाएँ बाएँ कुछ ही मीटर दूरी के छिद्रों में खारा पानी है। तब समझ में आया कि मीठे जल वाले छिद्र, सरस्वती नदी के पुराने भूमिगत प्रवाह पथ का निर्धारण करते हैं।

छवि निकुंज, बांस बंगलो कम्पाउण्ड
चौथी क्रासिंग, रांची रोड
पुरूलिया (प0 बंगाल)-723101

फलित ज्योतिष विज्ञान की शाखा नहीं

डॉ० कृष्णानन्द सिंनहा

प्रख्यात वैज्ञानिक गैलीलियो ने जब यह कहा कि विज्ञान के मामले तय करते समय हजारों व्यक्तियों की प्रभुता केवल एक विनम्र औचित्यपूर्ण तर्क के समक्ष कुछ भी नहीं है तो उन्हें सम्भवतः बहुमत की राय में छिपी शक्ति की जानकारी नहीं थी। लोगों ने यदि निश्चय कर लिया कि नई सहस्राब्दि 01 जनवरी 2001 के स्थान पर 01 जनवरी 2000 को आरम्भ होगी तो किसी भी तर्क से उनको किसी दूसरी बात के लिए सहमत नहीं किया जा सकता। हमने यह विलक्षण घटना अभी हाल में ही देखी है और फलित ज्योतिष के बारे में भी यदि ऐसी ही बात देखने में आ रही है तो क्या आश्चर्य !

फलित ज्योतिष को जब भी विज्ञान के आसपास कहीं रखने की चेष्टा की गयी है तो हमेशा इन विषयों की पारस्परिक भिन्नता को ध्यान में रखते हुए इसके साथ कुछ विशेषण लगाये गये हैं। प्रतीत होता है कि **सर्वसाधारण में खगोल विज्ञान एवं फलित ज्योतिष के अर्थों को लेकर भ्रान्तियाँ हैं।** इन दोनों विषय के अन्तर को बिना समझे हुए अनजाने में ही खगोल विज्ञान से उदाहरण लेकर लोग फलित ज्योतिष को वैज्ञानिक विषय सिद्ध करने का प्रयास करते हुए देखे जाते हैं।

ज्योतिष पर आधारित भविष्यवाणियों का आरम्भ बहुत पहले हो चुका था और इसके प्रचार–प्रसार में कतिपय प्रख्यात वैज्ञानिकों के नाम भी जुड़े हुए हैं, किन्तु जैसा कि आगे वर्णन किया गया है, विज्ञान की किसी अन्य शाखा के विरुद्ध इनमें नये तथ्यों एवं गवेषणाओं को बहुधा स्वीकार नहीं किया गया है। तारों के सापेक्ष सूर्य, चन्द्र, बुध, शुक्र, मंगल, बृहस्पति एवं शनि की गतियों को ध्यान में रखते हुए ग्रीसवासियों ने इन्हें 'प्लैनेट' कहा जिसका शाब्दिक अर्थ 'वाण्डरर' अथवा 'घुमक्कड़' है। ग्रीसवासियों से पूर्व हेब्रू लोगों ने इनके आधार पर सात दिन वाले सप्ताह का निर्माण किया और दिनों को नाम दिया। पृथ्वी से दिखायी पड़ने वाली इनकी एवं 'राहु केतु' की आभासी गतियों पर फलित की भविष्यवाणियाँ आधारित हैं अर्थात् भू–केन्द्रित हैं और इस परिकल्पना पर आधारित हैं कि ब्रह्माण्ड की समस्त वस्तुएँ पृथ्वी के चारों तरफ घूमती हैं। इस प्रकार एक अन्तर्निहित विरोधाभास के कारण फलित ज्योतिष में वक्र गतियों की बात की जाती है जो वस्तुतः पृथ्वी से दिखाई पड़ने वाली छद्मपूर्ण गतियाँ हैं। खगोल विज्ञान की कोई भी मामूली पुस्तक इस तथ्य की अच्छी तरह व्याख्या करती है। यहाँ पर यह ध्यान देने योग्य है कि राहु तथा केतु को प्लैनेट (ग्रह) नहीं कहा गया है। कोपरनिकस के सूर्य–केन्द्रित सिद्धान्त में, जिसे पूर्ण वैज्ञानिक आधार एवं समर्थन प्राप्त है, सूर्य के चारों ओर सभी ग्रह परिक्रमा करते हैं। सूर्य ग्रह नहीं है, पृथ्वी की परिक्रमा करता हुआ चन्द्रमा पृथ्वी का उपग्रह है और पृथ्वी ग्रह है। कालान्तर में अरुण, वरुण एवं यम नामक ग्रह खोजे गये। इस प्रकार आकाश में नौ ग्रह हैं जिनके नाम सूर्य से बढ़ती हुई दूरी के क्रम में बुध, शुक्र, पृथ्वी, मंगल, बृहस्पति, शनि, अरुण, वरुण तथा यम हैं। उपग्रह अपने अपने ग्रह की परिक्रमा करते हैं। यद्यपि तारों से सुसज्जित मनोहारी आकाश में कोरी

आँखों से दिखाई देने वाले पाँचों ग्रहों की गतियों का सहस्त्रों वर्षों से अध्ययन खगोलविज्ञान की अनूठी परम्परा के अनुरूप रहा है। राहु और केतु की खोज खगोल विज्ञान की महान उपलब्धियों में से एक है, परन्तु सूर्य और चन्द्रमा के साथ साथ राहु और केतु को ग्रहों में सम्मिलित किये रहना फलित ज्योतिषी का ही चमत्कार है। स्पष्ट है कि हिन्दी भाषा में 'प्लैनेट' को 'ग्रह' स्वीकार करना ज्ञात एवं प्रामाणिक तथ्यों के विरुद्ध होने से दोषयुक्त है जिसका परोक्ष लाभ फलित ज्योतिषी को मिलता है।

ग्रहों की गतियाँ हमें क्यों प्रभावित कर सकती हैं, इस विषय पर केवल अटकलें ही लगायी जाती हैं। कुछ लोग गुरुत्व की शक्ति की चर्चा करते हैं, परन्तु राहु और केतु में गुरुत्वाकर्षण शक्ति हो ही नहीं सकती क्योंकि ये दो काल्पनिक तलों के कटान बिन्दु हैं।

फलित ज्योतिषियों की भयोत्पादक भविष्यवाणियाँ, जो ग्रहों के आकाश में एक स्थान पर आभासी रूप से आने पर आधारित होती हैं, अनेक बार प्रयोगशालाओं एवं नक्षत्रशालाओं में कार्य कर रहे वैज्ञानिकों द्वारा गलत प्रमाणित की गई हैं। यद्यपि कई बार प्रलयकारी घटनाओं की भविष्यवाणियाँ हुई हैं लेकिन विपुल सम्पदा से भरी हुई इस पृथ्वी पर मानव समेत अनेक जीवधारी अभी तक विद्यमान हैं। यह अक्सर कहा जाता है कि फलितज्योतिषी के पंचांगों में चूँकि खगोलीय पिण्ड जैसे सूर्य और चन्द्रमा की स्थितियाँ सही सही दी रहती हैं अतः भविष्यवाणियों का वैज्ञानिक आधार है। **यह बात वास्तविकता से परे है।** यह जानना आवश्यक है कि इन स्थितियों की जानकारी कैसे होती है तथा ये कितने ठीक होते हैं। आधुनिक खगोल वैज्ञानिकों द्वारा निरन्तर शोध एवं परिमार्जन से प्राप्त विधियों पर आधारित गणना करके खगोलीय पिण्डों के साथ साथ सूर्य एवं चन्द्रमा की स्थितियाँ और इनके ग्रहण के समय कई वर्ष पूर्व ही सबके उपयोग के लिए उपलब्ध करा दिए जाते हैं। ग्रहण के समय की भविष्यवाणी में यदि कोई त्रुटि हो जाये तो साधारण जन भी इसे आसानी से जान सकते हैं परन्तु खगोलीय पिण्डों की स्थितियों में त्रुटि अथवा शुद्धता की माप और जानकारी आसान नहीं है। इसलिए फलितज्योतिषी सावधान रहते हैं और आधुनिक खगोल विज्ञान से ग्रहण के विषय में विशेष रूप से मदद लेते रहते हैं। इसके लिए स्वतंत्र रूप से अन्य कोई विशिष्ट गणना अधिक शुद्ध अथवा विश्वसनीय नहीं होगी और आधुनिक विज्ञान का इस प्रकार आंशिक उपयोग पुरानी रीतियों एवं मान्यताओं पर केवल एक आकर्षक आवरण चढ़ाने जैसा है।

प्राचीन साहित्य जैसे 'सूर्य–सिद्धान्त' के आधार पर की जाने वाली गणनाओं के सम्बन्ध में यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त है कि 26 मई 1854 के सूर्य ग्रहण की गणना अमेरिका के एक नगर के लिए पूर्ण सावधानी से की गई थी परन्तु अन्तिम परिणाम यह निकला कि आँख से देखे गये ग्रहण में और गणना के समय में पौने दो घंटे का अन्तर आया। इसी प्रकार काशी के लिए संवत् 1982 में माघ कृष्ण अमावस्या के सूर्य ग्रहण की गणना में सूर्य का व्यास तीन चौथाई भाग से अधिक छिप जाना चाहिए था और सूर्यग्रहण दो घंटे से अधिक समय तक लगा रहना चाहिए था परन्तु वैज्ञानिक गणनाओं के अनुरूप वास्तव में यह ग्रहण लगा ही नहीं। काशी के जो लोग इस ग्रहण को देखने की चेष्टा में थे, उन्हें निराश होना पड़ा। इस प्रकार यह बात स्वयं स्पष्ट है कि वर्तमान समय में खगोल विज्ञान की विश्वसनीय गणनाओं के स्थान पर पुरातन गणनाओं का उपयोग सिवाय अपनी सांस्कृतिक विरासत की सुरक्षा के और किसी अन्य बात के लिए उपयोग में नहीं लाया जा सकता है।

यह जानना एक रोचक विषय होगा कि फलित ज्योतिषी कोई कुंडली बनाते समय नवजात शिशु के जन्म का ठीक ठीक समय क्यों जानना चाहता है। यह सबको ज्ञात है कि पृथ्वी के अपनी धुरी पर घूमने के कारण आकाश की समस्त वस्तुएँ पश्चिम की ओर जाती हुई प्रतीत होती हैं। पृथ्वी का यह एक चक्कर 24 घंटे

में पूर्ण होता है। इसका अर्थ यह हुआ कि आकाश में स्थित किसी राशि अथवा नक्षत्र की स्थिति प्रत्येक घंटे में पन्द्रह अंश बदलेगी। हमको यह भी ज्ञात है कि आकाश में स्थित 12 राशियों में से प्रत्येक औसतन 30 अंश में फैली हुई है। अतः किसी अनुवर्ती राशि को पहली राशि के स्थान लेने के लिए लगभग दो घंटे का समय चाहिए। इसी प्रकार यह एकदम असम्भव है कि कोई ग्रह अचानक अपनी स्थिति में बड़ा परिवर्तन कर दे। यह जानने के लिए कि किसी राशि का सीमा के पास स्थित कोई ग्रह नियत समय में अपनी राशि बदलेगा या नहीं, स्थूल गणनाएँ ही पर्याप्त हैं। इसलिए फलितज्योतिषी को इस बात की चिन्ता नहीं करनी चाहिए कि उसे किसी व्यक्ति के जन्म का समय कितना सही सही बताया गया है। परन्तु यदि वह सचमुच इस पर जोर देता है और जन्म के समय के एक एक मिनट एवं सेकण्ड में शुद्ध होने की अपेक्षा रखता है तो यह समझ लेना चाहिए कि अपनी भविष्यवाणियों में सम्भावित त्रुटियों से वह अपने को सुरक्षित रखना चाहता है।

ऐसा अनेक बार हुआ है कि लोगों ने एकदम खुले मन से भी जानना चाहा कि फलितज्योतिष कहीं सांख्यिकी के सिद्धान्तों पर तो आधारित नहीं है। इन गवेषणाओं का परिणाम नकारात्मक ही रहा है। इस दृष्टिकोण से वैज्ञानिक पत्रिका 'साइंस टुडे–2001' अगस्त 1988 के पृष्ठ 22 से 25 विशेष रूप से पठनीय हैं। अनेक वैज्ञानिकों ने फलितज्योतिष से सम्बन्धित भ्रान्तियों को बार बार दूर करने का प्रयास किया है और जब जब इसे विज्ञान की एक प्रमाणित शाखा बताने का प्रयास किया गया तो इसका विरोध भी किया है। गोवा में सम्पन्न साइंस कांग्रेस की बैठक में एक फलितज्योतिषी को सम्मान दिए जाने की बात पर वैज्ञानिकों ने जबर्दस्त प्रतिकार किया था।

अपने देश में प्राचीन बौद्ध साहित्य में फलित ज्योतिष का प्रतिकार किया गया है और बाद में जब बौद्ध धर्म कमजोर पड़ा तभी इसकी प्रतिष्ठा बढ़ी। यह माना जाता है कि भारत में यह ज्ञान पश्चिमी देशों से आया।

चूँकि विज्ञान में लगातार परिमार्जन एवं सुधार पर विशेष बल दिया जाता रहा है, इसलिए पुरानी विधियों एवं गणनाओं पर जैसा कि पूर्व में दर्शाया भी गया है भरोसा नहीं किया जा सकता है। सैकड़ों वर्ष पूर्व की गणनाएँ, उनकी विधियाँ आदि विश्वसनीय नहीं रही हैं। अनेक बार असन्तुष्ट रूप से यह कह दिया जाता है कि अमुक घटना प्राचीनकाल में हुई। कई प्रतिष्ठित व्यक्तियों/वैज्ञानिकों का नाम लेकर यह बता दिया जाता है कि उन्होंने बहुत महत्वपूर्ण कार्य किया था परन्तु उन्होंने वह कार्य कब किया, बहुधा इसके बारे में प्रामाणिक जानकारी का अभाव रहा है। महत्वपूर्ण वैज्ञानिक उपलब्धियों एवं कृतियों को समय के विश्वसनीय क्रमानुसार (chronological order) प्रस्तुत करने से उनसे सम्बद्ध कई अन्य बातों का भी ज्ञान होता है। इससे मानवता ने विज्ञान की कई शाखाओं को विकसित करने में हजारों वर्षों में जो अथक श्रम किया है, उनमें वैज्ञानिक परम्पराओं का किस तरह से विकास हुआ है, उन्हें किस प्रकार स्वीकार किया गया है और विभिन्न संस्कृतियों एवं सभ्यताओं के पास पास आने से वैज्ञानिक ज्ञान एवं सोच को किस प्रकार नई दिशाएँ मिली हैं और बढ़ावा मिला आदि अनेक बातें, बहुत स्पष्ट रूप से सामने आती हैं। विज्ञान का विकास अकेलेपन में अर्थात् दूसरे विषयों, विचारधाराओं एवं अन्य सभ्यताओं से कटकर नहीं हो सकता है।

संक्षेप में, यह कहा जाना चाहिए कि फलित ज्योतिष की भविष्यवाणियों का कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है तथा भविष्यवाणियाँ करना एक 'कला' है और इसका आधार आस्था अथवा विश्वास है।

इन्दिरा गाँधी नक्षत्रशाला
9, नबीउल्लाह रोड, सूरज कुण्ड पार्क
लखनऊ–226018

सातवाँ विश्व हिन्दी सम्मेलन : फिर उपेक्षित हुआ विज्ञान लेखन

डॉ० राय अवधेश कुमार श्रीवास्तव

अटलांटिक महासागर की लहरों से अभिषिक्त, भारत से 17 हजार किलोमीटर दूर, कैरेबियाई देश सूरीनाम की सुरम्य राजधानी पारामारिबो में 5 जून से 9 जून 2003 के मध्य आयोजित सातवें विश्व हिन्दी सम्मेलन का विषय था 'विश्व हिन्दी : नई शताब्दी की चुनौतियाँ' जिसमें 21वीं शताब्दी में हिन्दी की भूमिका और एक अंतर्राष्ट्रीय भाषा के रूप में हिन्दी को बढ़ावा देने में आने वाली चुनौतियों पर चर्चा करने के लिए करीब 30 देशों के 400 से अधिक प्रतिष्ठित प्रतिनिधियों ने हिस्सा लिया। इस सम्मेलन को भारत तथा सूरीनाम दोनों देशों की सरकारों का सक्रिय समर्थन प्राप्त था।

अप्रैल 2003 के अंतिम सप्ताह में जब मैं भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली पर स्थित आई.एस.आई. एल. बिल्डिंग के कमरा नं0 304 में सातवें विश्व हिन्दी सम्मेलन समन्वय समिति के कार्यालय में सलाहकार श्री नारायण कुमार से मिला तो चर्चा के दौरान उन्होंने बताया था कि इस सम्मेलन में कई महत्वपूर्ण मुद्दों पर विचार–विमर्श होना है। सम्मेलन में प्रवासी भारतवंशी और विश्व हिन्दी के समक्ष चुनौतियाँ, हिन्दी की बोली में नया सृजन, हिन्दी और प्रसारण, हिन्दी और पत्रकारिता, अर्थव्यवस्था में हिन्दी की भूमिका, हिन्दी और शिक्षण व्यवस्था, भारतेतर देशों में हिन्दी का समकालीन रचनात्मक परिदृश्य, हिन्दी में अनुवाद और संदर्भ साहित्य, भविष्य की हिन्दी और हिन्दी का भविष्य जैसे मुद्दों के अलावा विश्व हिन्दी एवं सूचना प्रौद्योगिकी की भूमिका पर गहन चिंतन होगा तथा भविष्य की कार्ययोजना बनायी जायेगी।

6 जून 2003 को सातवें विश्व हिन्दी सम्मेलन का उद्घाटन सूरीनाम के राष्ट्रपति रोनाल्डो रोनाल्ड वेनेशियान ने मंगलाचरण, दीप प्रज्ज्वलन और भारत तथा सूरीनाम के राष्ट्रगान के साथ किया। उद्घाटन समारोह में सम्मेलन के विषय की रूपरेखा प्रस्तुत करते हुए भारत के विदेश राज्यमंत्री श्री दिग्विजय सिंह ने अन्य बातों के अलावा कहा कि (1) हिन्दी को विश्व की भाषा बनाने के लिए और उसे जन जन से जोड़ने के लिए हिन्दी को रोजगार की भाषा बनाना होगा तथा (2) हिन्दी को नए जमाने की प्रौद्योगिकी से जोड़ना होगा। उन्होंने यह भी कहा कि हिन्दी भाषा के माध्यम से ही आर्थिक प्रगति, विकास और समृद्धि संभव है। हिन्दी को विश्व भाषा बनाने के लिए उसे अर्थजगत और व्यापार की भाषा भी बनाना है।

उपलब्ध सूचनाओं के अनुसार सूरीनाम के सम्मेलन में जो प्रतिनिधि मंडल सरकारी खर्चे पर भेजा गया उसमें 71 लोगों के नाम थे। इनमें ज्यादातर वे ही सरकारी लोग थे जिनके रहते भारत में हिन्दी की वर्तमान दशा पर चारों ओर आक्रोश है। वैसे सरकारी प्रतिनिधि मंडल में कई प्रसिद्ध साहित्यकारों के नाम भी देखने को मिले। उनमें विद्यानिवास मिश्र, निर्मल वर्मा, केदारनाथ सिंह, अशोक वाजपेयी, वेद प्रताप वैदिक, कन्हैया लाल नन्दन, पद्मा सचदेव, श्री लाल शुक्ल, प्रभाष जोशी, नरेन्द्र कोहली, असगर वजाहत, सोम ठाकुर, नीरज, कुँवर बेचैन, अशोक चक्रधर, हिमांशु जोशी, कमलेश्वर, प्रभा ठाकुर, कमल किशोर गोयन्का, गंगा प्रसाद विमल, निर्मला जैन, चित्रा मुद्गल, मृदुला सिन्हा, मृदुला गर्ग के नाम शामिल थे। इनके अलावा

नारायण कुमार, बालेश्वर अग्रवाल, तरुण विजय, विजय कुमार मल्होत्रा, श्री भगवान सिंह, जसदेव सिंह, अनुराग चतुर्वेदी, हरिवंश, दया कृष्ण, रामदरश मिश्र सहित राज्यों के प्रतिनिधि मंडल में भगवत रावत, कमला प्रसाद, राजेश जोशी, कुमार विमल, रामवचन राय, शैलेन्द्र नाथ श्रीवास्तव, सियाराम तिवारी, राधाकृष्ण सिंह, ऊषा किरण खान, विनेश्वर प्रसाद, अशोक प्रियदर्शी, विजय मोहन सिंह, श्योराज सिंह बेचैन, नानक चंद, सूर्य प्रकाश दीक्षित, विजयदान देथा और यादवेन्द शर्मा 'चन्द्र' के नाम शामिल थे। इनके अलावा लोकसभा तथा राज्यसभा के भी कुछ सदस्य सरकारी खर्चे पर इस सम्मेलन में हिस्सा लेने गये थे।

परन्तु निर्मल वर्मा, अशोक वाजपेयी, केदार नाथ सिंह, विजय मोहन तथा निर्मला जैन जैसे कुछ वरिष्ठ साहित्यकार इस सम्मेलन में गए ही नहीं। लंदन सम्मेलन के अनुभवों को देखते हुए नामवर सिंह जैसे कई लोगों ने भी इस सम्मेलन से खुद को पहले से ही अलग कर लिया था जिसके कारण सम्मेलन में 'वैचारिक तेज' तथा 'गंभीरता' का अभाव बना रहा। सम्मेलन में कमलेश्वर, विद्यानिवास मिश्र, श्री लाल शुक्ल, प्रभाष जोशी जैसे चन्द नामी–गिरामी लेखकों की मौजूदगी भी रंग जमा नहीं पायी। सब कुछ सरकारी मामलों की तरह ही चला। सम्मेलन में पाँच विदेशी विद्वान आए ही नहीं जिन्हें सम्मानित किया जाना था। भारतीय विद्वानों में कुँवर नारायण तथा एन.वी. राजगोपालन भी नहीं गए। इस दृष्टि से सम्मेलन ज्यादा सफल नहीं हो पाया। दरअसल सम्मेलन शुरू होने से पहले शिष्टमंडल में शामिल होने की जिस तरह होड़ मची थी और राजनीतिक प्रभाव का इस्तेमाल किया जा रहा था उससे हिन्दी के गंभीर एवं निष्ठावान लेखकों और हिन्दीसेवियों का खिन्न होना स्वाभाविक था।

चार दिवसीय सातवें विश्व हिन्दी सम्मेलन में पारित प्रस्तावों में यह कहा गया है कि हिन्दी और उसका साहित्य तथा संस्कृति वैश्विक विरासत का प्रतिनिधित्व करती हैं और इस भाषा को दुनिया के सौ से अधिक देशों में बोला जाता है। हिन्दी को संयुक्त राष्ट्र की आधिकारिक भाषा बनाने के लिए भारत सरकार से आग्रह किया गया है कि वह संयुक्त राष्ट्र में हिन्दी भाषा को शामिल करने के लिए प्रयास तेज करे और इसके लिए अन्य देशों से समर्थन हासिल करें।

अब जबकि सातवाँ विश्व हिन्दी सम्मेलन समाप्त हो चुका है, तब यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि इस सम्मेलन से हिन्दी का क्या भला हुआ, विशेषरूप से हिन्दी भाषा में विज्ञान लेखन तथा विज्ञान लोकप्रियकरण के सरोकार का ? परन्तु इस संदर्भ में सूरीनाम सम्मेलन के सम्पूर्ण कार्यवृत्त तथा घटनाएँ हमें आश्वस्त करने में पूर्णतः असफल होती नजर आती हैं। वहाँ जो कुछ हुआ वह यही सिद्ध करता है कि 22 देशों में 80 करोड़ से अधिक लोगों द्वारा बोली जाने वाली भाषा हिन्दी के नाम पर राजकाज करने वाले लोगों की चिन्ताएँ और सरोकार बिल्कुल ही भिन्न हैं।

पिछले सम्मेलनों की भाँति सातवें विश्व हिन्दी सम्मेलन में भी भाग लेने वाले अधिकांश व्यक्ति हिन्दी साहित्य या हिन्दी पत्रकारिता से जुड़े रहे हैं। विडंबना यह भी रही है कि इस सम्मेलन में जहाँ चर्चा का एक विशिष्ट विषय 'विश्व हिन्दी एवं सूचना प्रौद्योगिकी की भूमिका' रही है वहीं सरकारी प्रतिनिधि मंडल में हिन्दी की सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में कार्य करने वाले किसी एक विशेषज्ञ को भी शामिल नहीं किया जाना आश्चर्यजनक है। इस क्षेत्र में कार्यरत डॉ0 ओम विकास, डॉ0 सूरजभान सिंह, प्रो0 कर्मेशु, डॉ0 आदित्य शास्त्री, डॉ0 वी.एन. शुक्ला जैसे विशेषज्ञों को प्रतिनिधि मंडल में स्थान न देना इस बात का प्रमाण बन गया है कि सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हिन्दी के प्रयोग के प्रति भारत सरकार कितनी गंभीर है। हिन्दी की सर्वमान्य वर्तनी, कम्प्यूटर के फोंट, की–बोर्ड और ई–मेल की समस्याओं को सुलझाने की दिशा में क्या प्रयत्न किए गए, कौन से कदम उठाए गए ? हिन्दी और इन्टरनेट, हिन्दी में कम्प्यूटर टेक्नोलाजी के बदलते परिदृश्य, देवनागरी लिपि, कम्प्यूटर के सन्दर्भ में तथा हिन्दी में नए साफ्टवेयर विषयों पर सरकारी प्रतिनिधि मण्डल में जिन विशिष्ट तथा मूर्धन्य लोगों के नाम हैं वे क्या कर

पाए होंगे, सहज ही समझा जा सकता है। स्त्री विमर्श, दलित साहित्य विमर्श तथा नवजागरण जैसे मुद्दों पर अपनी लेखनी तथा राजनीति करने वाले हिन्दी के साहित्यकार तो न जाने कब से भारतीय जनमानस की दैनिक चिन्ताओं तथा सरोकारों से विमुख हो चुके हैं। ऐसे में उनसे यह आशा करना कि वे जनसाधारण में वैज्ञानिक साक्षरता, वैज्ञानिक चेतना तथा वैज्ञानिक संस्कृति के विकास हेतु हिन्दी को एक आधुनिक तथा जनोपयोगी भाषा बनाने में सहायता तथा सहयोग करेंगे, बेमानी सी बात लगती है। क्या हिन्दी भाषा केवल हिन्दी साहित्य की भाषा है या दूसरे शब्दों में कहें तो क्या साहित्य ही हिन्दी है ? विश्व सम्मेलनों की परम्परा तो यही सिद्ध करती प्रतीत होती है। केवल हिन्दी के साहित्यकार ही हिन्दी का प्रतिनिधित्व करते हैं और केवल उन्हीं के नाम पर हिन्दी चल रही है। नहीं तो सरकारी और संस्थागत स्तरों पर हिन्दी भाषा में विज्ञान लेखन, विज्ञान संचार तथा विज्ञान लोकप्रियकरण से जुड़े लोगों की इन सम्मेलनों में इस प्रकार उपेक्षा न की जाती। विश्व हिन्दी सम्मेलनों में केवल साहित्यकारों तथा पत्रकारों की भागीदारी की एकांगिकता अन्य विधाओं, विशेषकर विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी के क्षेत्र, में हिन्दी को प्रतिष्ठित करने में सहायक नहीं हो सकती है। जबकि आज के परिदृश्य में भारत जैसे विकसित राष्ट्र बनने का सपना देखने वाले देश में जनमानस को उन्हीं की भाषा में वैज्ञानिक जागरूकता से लैस करना नितांत आवश्यक है ताकि विज्ञान आधारित विकास की नीतियाँ तथा कार्यक्रम उनके लिए सुग्राह्य हों और उनके जीवन स्तर को समृद्ध कर सकें। ऐसे में हिन्दी में विज्ञान लेखन तथा प्रस्तुतिकरण की विभिन्न विधाओं की प्रासंगिकता महत्वपूर्ण हो जाती है। हिन्दी के माध्यम से विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी के लोकप्रियकरण द्वारा ही भारतीय समाज में वैज्ञानिक तथा तकनीकी साक्षरता लायी जा सकती है।

एक तरफ तो उद्घाटन समारोह में भारत के विदेश राज्यमंत्री श्री दिग्विजय सिंह हिन्दी को रोजगार की भाषा बनाने तथा हिन्दी को नए जमाने की प्रौद्योगिकी से जोड़ने की बात करते हैं वहीं दूसरी ओर उन लोगों को सरकारी स्तर पर पूर्णतः उपेक्षित किया जाता है जो हिन्दी के माध्यम से विज्ञान लोकप्रियकरण के कार्य में वर्षों से लगे हैं तथा अपनी भाषा तथा सरोकार के प्रति सचेत तथा निष्ठावान हैं।

मेरा मानना है कि जब तक हिन्दी में विज्ञान लेखकों तथा विज्ञान शिल्पियों को इन अवसरों पर साहित्यकारों के साथ साथ उचित सम्मान तथा मर्यादा के साथ नहीं जोड़ा जाता तब तक श्री सिंह की बात महज नक्कारखाने में तूती की आवाज ही बनकर रह जायेगी। साथ ही जब तक विज्ञान, प्रौद्योगिकी, समाज, विज्ञान, कला तथा शिल्प की सभी विधाओं में हिन्दी का प्रयोग नहीं होगा तब तक हिन्दी न तो रोजी रोटी की, न अच्छी कमाई की और न नए जमाने की विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी की भाषा बन पाएगी।

गौरतलब है कि पाँचवें विश्व हिन्दी सम्मेलन (1996, त्रिनिडाड) में दो बातों पर विशेष बल दिया गया था। पहला, हिन्दी को विश्व भाषा बनाने के लिए विदेशों में हिन्दी शिक्षण को बढ़ावा देना, दूसरा, भारत को उन्नत राष्ट्र बनाने के लिए सभी स्तरों पर हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं को शिक्षा तथा अनुसंधान का माध्यम बनाना। परन्तु हुआ क्या ? विश्व हिन्दी सम्मेलनों में प्रस्ताव पारित कर उन्हें भुला दिया जाता रहा है। लोगों के बीच इन सम्मेलनों से इतनी अपेक्षाएँ क्यों जगाई जाती हैं। जबकि उन्हें उपेक्षित ही होना होता है ? यदि यही हालात रहे तो भविष्य में होने वाले विश्व हिन्दी सम्मेलन अपनी उपयोगिता खोते जाएंगे और वे केवल पार्टियों, तोहफे बाँटने, सैर–सपाटे, कवि सम्मेलनों तथा स्तरहीन बहसों के लिए दूर दूर से आए तथाकथित हिन्दीप्रेमियों का जमावड़ा बनकर रह जाएँगे। यही आलम रहा तो विश्व हिन्दी सम्मेलनों की उत्सवधर्मिता के सुहाने दृश्य भविष्य में भी उपस्थित होते रहेंगे। कहीं ये विश्व हिन्दी सम्मेलन एक रूमानी तथा खूबसूरत ख्याल ही न बनकर रह जाएँ ! उम्मीद है कि हालैंड में होने वाले आठवें विश्व हिन्दी सम्मेलन की कहानी जरूर बदलेगी। वहाँ हिन्दी में विज्ञान

लेखन, विज्ञान संचार तथा विज्ञान लोकप्रियकरण की समस्याओं तथा भविष्य की गतिविधियों को चर्चा का विषय अवश्य बनाया जाएगा तथा सरकारी प्रतिनिधि मंडल में केवल साहित्यकारों तथा पत्रकारों को शामिल करने की एकांगिकता समाप्त होगी। इसके लिए विज्ञान जगत को सजग रहकर प्रयत्न करने होंगे। विज्ञान परिषद् प्रयाग, इलाहाबाद, भारतीय विज्ञान लेखक संघ, नई दिल्ली, विज्ञान प्रसार, नई दिल्ली, राष्ट्रीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संचार परिषद्, नई दिल्ली, राष्ट्रीय विज्ञान एंव सूचना स्रोत संस्थान, नई दिल्ली, राष्ट्रीय सूचना केन्द्र, नई दिल्ली जैसी संस्थाओं तथा हिन्दी में प्रकाशित होने वाली विज्ञान पत्रिकाओं को विश्व हिन्दी सम्मेलनों के संबंध में समय से सूचनाएँ देने की व्यवस्था करनी होगी तथा अपने जायज हक के लिए रचनात्मक पहल जारी रखनी होगी। परन्तु मुझे तो मौजूदा हालात में परिवर्तन की उम्मीद कम ही नजर आ रही है क्योंकि दोनों तरफ पहल की जो जरूरत है वह खोई भी है और सोई भी है।

खैर, सातवें विश्व हिन्दी सम्मेलन में सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हिन्दी के प्रयोग के संबंध में जो भी कार्य योजना बनी हो, वह भविष्य की गतिविधियों द्वारा अपने आप सामने आ जाएगी। पर हिन्दी माध्यम् से विज्ञान प्रसार से जुड़े हमारे जैसे लोगों के लिए खुशी की बात यह है कि स्टेट यूनिवर्सिटी आफ न्यूयार्क, ऑसवीगो से सेवानिवृत्त 72 वर्षीय भौतिकी के प्रोफेसर तथा भारतीय नागरिक डॉ0 रामदास चौधरी को इस सम्मेलन में उनके विशिष्ट योगदान के लिए सम्मानित किया गया। ऑसवीगो, न्यूयार्क अमेरिका में रह रहे डॉ0 रामदास चौधरी 'विश्व हिन्दी न्यास' के कार्यकारी निदेशक तथा हिन्दी जगत एवं विज्ञान प्रकाश जैसी अन्तर्राष्ट्रीय पत्रिकाओं के प्रधान सम्पादक हैं। डॉ0 चौधरी का दृढ़ विश्वास है कि भारत के उत्थान के लिए भारतीय भाषाओं को आधुनिक ज्ञान विज्ञान का माध्यम होना अनिवार्य है। भारत में हिन्दी माध्यम से विज्ञान लोकप्रियकरण से जुड़े हम सबकी ओर से प्रो0 रामदास चौधरी को हार्दिक बधाई।

पूर्व अध्यक्ष,
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
2 बी ग्रीन पार्क, बल्लूपुर
देहरादून-248001 (उत्तरांचल)

पृष्ठ 21 का शेष

निषेचित अंडे रखता है। इसके ऊपर म्यूकस का आवरण रहता है। यह फोम की निचली सतह से चिपका रहता है। इस तरह से नर घोंसले की देखरेख करता है।

यूरोपियन बीटरलिंग (रेडियस) में परिपक्व मादा स्पानिंग समय में एक ओवीडक्ट से बड़ी नाली बनाती है जो आवोपोजीटर का कार्य करती है जिसकी सहायता से मादा वाईवाल्व मोसक में अंडे जमा करती है। जैसे ही मादा अंडे देती है नर उसे निषेचित कर देता है। हैचिंग स्फुटन के बाद फ्राई मोल्सक को छोड़ देता है। गोबिज़, ब्लीच बुलहैड अपने अंडे खाली बाईवाल्व शेल में रखते हैं अथवा दरारों या पत्थरों के नीचे रखते हैं।

सैंड गोबी पोमैटोस्किसटस माईन्युटस मछली का नर पहले एक मोल्सकन शैल छोड़ता है फिर उसे उल्टा कर देता है, उसके अवतल भाग के नीचे की रेंत को अपनी पूँछ द्वारा साफ करता है और एक छोटा कमरा बना लेता है जो एक पतली टनल द्वारा बाहर खुलता है। यह सारा ढाँचा मिट्टी और रेत से ढक दिया जाता है। इसके बाद मादा इसमें अंडे देती है।

करटस इडिकस (परसीफारमिस) में नर के माथे पर दो अस्थिकंटक निकल आते हैं। अंडे दो गुच्छों में अंडझिल्ली द्वारा लगे होते हैं। अंडे इन अस्थिकंटकों से चिपके रहते हैं और नर तैरता रहता है।

सहप्राध्यापक
मत्स्य महाविद्यालय
गो.व.प.वि.वि.प्रौ. एवं. कृषि
पन्तनगर-263145

आओ वसीयत करें

इस जिस्म के मिटने का क्या ग़म 'शमा' नाम अमर हो जायेगा

श्याम सरन अग्रवाल 'शमा'

श्याम सरन 'विक्रम' सम्प्रति 87 वर्ष के हैं। मैंने उनसे 'विज्ञान' के लिए रचना माँगी तो उन्होंने एक कविता भेजी। मेरी दृष्टि में यह महत्वपूर्ण दस्तावेज है। विक्रम जी शतायु हों– यही कामना है। **– सम्पादक**

इक दिन ऐसा भी आयेगा, जब लाद चलेगा बनजारा
सब ठाट पड़ा रह जायेगा, मिट जायेगा किस्सा सारा
तब ज़ेरे कफ़न वहाँ मौत नहीं, इक ऐन नया मंज़र होगा
कुछ ख़ास ज़रूरतमंदों की ख़ातिर आग़ाज़े सफ़र होगा
कुछ ही लम्हा तक आँखों के तारे जगमग रह पाएँगे
कुछ ही लम्हे दिल और ज़हन, गुर्दे साबुत बच पायेंगे
कोई आँखों से महरूम बशर, देखे ना जिसने शामोसहर
नन्हें की प्यारी–प्यारी शकल, बीवी की प्यार आमेज़ नज़र
मेरी आँखें उसको दे देना, वो शाहंशाह हो जायेगा
अंधियारों में टकराता था, उजियारों में हो जायेगा
कोई ख़स्ता दिल नज़दीके अजल, इक इक कर दिन गिनता होगा
हाय ! वो छूट गया, ये छूट रहा, कह हाथों को मलता होगा
मेरा दिल उसको दे देना तुम, कुछ चैन से और जी लेगा वो
मरना मेरा, जीना उसका, इक लुत्फ़ो करम हो लेगा वो
कोई गुर्दे का बीमार मिले, हो जिसका सहारा डाइलाइजर
गुर्दा मेरा मिल जाने पर, मोहलत कुछ पा लेगा वो बशर
मेरे खून में जब तक शिद्दत हो, किसी साग़िर में भर लेना तुम
जिसके कार के मलबे से खींचो, दम तोड़ना हो, उसे दे देना तुम
वो फ़ज़्ले इलाही के दम से कुछ और भी जी लेगा खुश खुश
नाती पोतों में मस्त मगन, हँस खेलता जी लेगा खुश खुश
मेरी हड्डियों में, मेरे पुट्ठों में जब तक कुछ दमखम बाक़ी हो
किसी लूले लँगड़े को देना, जिंदगानी जिसकी आधी हो
कोई आग का झुलसा ऐसा हो, हो खाल न बाकी तन पे कहीं
मेरी खाल उसे मढ़वा देना, हो लेगी उसकी जीत वहीं
रेशा रेशा रग रग नस नस दीमाग़ की भी काम आयेगी
किसी गूँगे बहरे को वाणी और श्रवण शक्ति मिल जायेगी
जो बचे खुचे, उसे फूँक फाँक, इक मुश्ते ख़ाक बना लेना
शहीदाने वतन की जो राहेगुज़र हो उसपे तुम बिखरा देना
कुछ दफ़न अगर करना ही हो, मेरे ऐबों को दफ़ना देना
फिर सर न उठा पावें ऐसे गहरे गहरे दफ़ना देना
कोई हमदर्दी का तालिब हो, उसे प्रेम से तुम ढाढ़स देना
मैं जल्वागर हो जाऊँगा, मुझे दिल में अपने पा लेना
जब इतना सब कर लोगे तो बाक़ी क्या कुछ रह जायेगा
इस जिस्म के मिटने का क्या ग़म ? 'शमा' नाम अमर हो जायेगा।

24 फरवरी 2003

68, असिस्टेंट लाइन, बिरला नगर, ग्वालियर

ज़ेरे कफ़न– कफ़न के नीचे, इकऐन– एकदम, मंजर– दृश्य, आग़ाज़े– शुरुआत, लम्हा– क्षण, ज़हन– दिमाग़, बशर– इन्सान, सहर– सुबह, अजल– मौत, लुत्फ़ोकरम– पुण्य का सुख, डाइलाइजर– डायलिसिस यंत्र, शिद्दत– गरमी, सागिर– बर्तन (फ्लास्क), फज़्ले इलाही– प्रभुकृपा, इकमुश्ते खाक– मुट्ठी भर खाक, तालिब– ज़रूरतमंद

भारत सरकार

महासागर विकास विभाग

ब्लॉक-12, सी.जी.ओ. कॉम्प्लेक्स

लोदी रोड, नई दिल्ली-110003

संकल्प

'महासागर विकास विभाग पुरस्कार योजना' के अंतर्गत मौलिक हिन्दी पुस्तक लेखन को बढ़ावा देने के लिए दिनांक 6.7.94 को जारी संकल्प सं. मविवि/6/7/94-हिन्दी में आंशिक संशोधन करते हुए पुरस्कार की राशि बढ़ाकर निम्नलिखित कर दी गई है।

प्रथम पुरस्कार – 50,000 रु0

द्वितीय पुरस्कार – 40,000 रु0

तृतीय पुरस्कार – 30,000 रु0

उपर्युक्त वृद्धि वर्ष 2003 से प्रभावी होगी।

चमगादड़ों की विचित्र दुनिया

विश्व मोहन तिवारी

यदि आपको विचित्र जीवों या वस्तुओं के विषय में जानकारी प्राप्त करने में आनंद आता है तब आपको प्रकृति का अध्ययन और अवलोकन अवश्य करना चाहिए। क्या आप किसी ऐसे जानवर को जानते हैं जिसकी आँखें तो होती हैं और प्रकाश में भी काम करती हैं, जो गहन अंधकार में आँखों के बजाय मुँह और कान और स्पर्शेन्द्रियों से देखता है ? अंग्रेजी कहावत 'चमगादड़ के समान अन्धा' मनुष्य का अज्ञान ही बताती है क्योंकि चमगादड़ के समान देखने की शक्ति किसी और प्राणी में नहीं होती। क्या कोई स्तनपायी जानवर उड़ भी सकता है ? हाँ, मनुष्य तो विमान में बैठकर मजे से उड़ सकता है। किंतु यदि प्रश्न का अर्थ था कि क्या कोई स्तनपायी जानवर अपनी स्वाभाविक अवस्था में उड़ सकता है, तब भी उत्तर है– हाँ, और वह जानवर है चमगादड़। चमगादड़ नाम में चमगीदड़ के 'चाम' का समासगत रूप 'चम' है तथा 'गीदड़' का बोलने में सरल रूप गादड़ है। चम का अर्थ है चमड़ा। इसे गीदड़ नाम शायद इसलिए दिया गया कि यह गीदड़ के समान लोकप्रिय जानवर नहीं है, गाँव तथा शहरों में गीदड़ भी

रात को ही निकलते हैं। यद्यपि इसका मुँह छोटा होता है, फिर भी गीदड़ के मुँह से थोड़ी बहुत समानता रखता है। विश्व में महाकाय चमगादड़ को वास्तव में 'उड़नगीदड़' (फ्लाइंग फाक्स) कहते हैं। मादा चमगादड़ अंडे न देकर शावकों को जन्म देती है और उन्हें दुग्धपान कराती है। इसके 'पक्ष' परों से न बनकर चमड़े की पतली झिल्ली से बनते हैं। सभी स्तनपायी जानवरों के समान यह कशेरुकी है अर्थात इसकी कशेरुका (रीढ़ की हड्डी) है तथा इसके शरीर पर रोम या बाल होते हैं। इसका शरीर समतापी है अर्थात् हमेशा (स्वस्थ अवस्था में) एक ही ताप होता है। इसमें स्तनपायी जानवर के समस्त गुण हैं, और

स्तनपायी में केवल यही समुदाय है जिसके पंख होते हैं और उड़ता है। वैसे भीमाशंकर (पुणे के निकट) में मैंने भीमकाय 'भीमा गिलहरी' देखी थी जो एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष तक उड़ती सी पहुँच जाती थी। यद्यपि उसे भी 'उड़न गिलहरी' कहा जाता है, किंतु उसकी छलांग को उड़ना नहीं कह सकते। उसकी पीठ से दोनों तरफ सँकरे पंख के समान उसके रोमिल चर्म का फैलाव होता है। यह फैलाव उसे 'ग्लाइडर' या कहें 'पैराशूट' के

समान हवा में धीरे धीरे उतरने में मदद करता है। इस तरह उसकी छलांग अब दुगनी या तिगुनी लंबी हो जाती है।

संध्या समय कीड़ों वाले स्थानों में चमगादड़ों को कुशल तथा सुंदर उड़ानें भरते हुए देखा जा सकता है। लगता है कि जैसे ये 'खेल' रही हों, या दो मिलकर पकड़न–पकड़ाई खेल रही हों। यह भी हो सकता है कि वह पकड़न–पकड़ाई का खेल न होकर एक चमगादड़ दूसरे के अनधिकार प्रवेश का विरोध कर रही हो। और कभी आपको यह भ्रम हो सकता है कि ये दो जीव जो इस तरह कुशलतापूर्वक चपल तथा सुंदर उड़ान भर रहे हैं, चमगादड़ नहीं, वरन् वर्ग पूंछ बतासी हैं, जिन्हें आप संध्या के आकाश में खेलते हुए जब तब देखते ही रहते हैं।

इस स्तनपायी का उड़ान के लिए जो विकास हुआ है वह सरीसृप डायनासोर के पक्षियों के विकास से कम आश्चर्यजनक नहीं। जब पृथ्वी पर अश्व पुरातन 'चार आंगुल अश्व' था तब भी चमगादड़ का यही रूप था जो अभी है। इसमें सभी विकास–विज्ञानी सहमत हैं कि प्रारंभ में सभी चमगादड़, एक तो कीटभक्षी थे और दूसरे वृक्षों पर अधिकतया रहते थे। किन्तु इसके बाद उन्होंने अपने अद्‌भुत विशिष्ट पंखों का, रात में देखने के 'रेडार' का कैसे कैसे विकास किया, ऐसी जानकारी देने वाले जीवाश्म नहीं मिले हैं। इसके पंख नग्न चर्म की झिल्ली से बने हैं। यह झिल्ली का फैलाव ऊपर कंधे से लेकर हाथ की अंगुलियों तक होता है, फिर नीचे पैर (पंजों को छोड़कर) तक जाता है। दोनों जाँघों के बीच भी झिल्ली होती है जिसे 'ऊरु झिल्ली' (inter gemoral) कहते हैं। ऊपर गर्दन से झिल्ली प्रारंभ होकर बाहु के ऊपर से सीधी कलाई तक जाती है, इसे 'अधिबाहु झिल्ली' (ante-brachial) कहते हैं। विचित्रता यह है कि मात्र अंगुलियों में चर्म झिल्ली का फैलाव, बाहु फैलाव के बराबर ही होता है। उड़न में दिशा नियंत्रण आंगुलि पंख द्वारा सर्वाधिक होता है। ऊरु झिल्ली दिशा नियंत्रण कम, उत्थान (lift) अधिक देती है जबकि पक्षियों में पूंछ उत्थापन कम, दिशा नियंत्रण अधिक करती है। चमगादड़ के शरीर में वक्ष बड़ा होता है ताकि हृदय अधिक रक्त प्रवाह कर सके, फेफड़े वायु में से अधिक प्राण वायु ग्रहण कर सकें तथा पंखों को चलाने के लिए अधिक सशक्त पेशियाँ बन सकें।

यदि चमगादड़ के पैर, बाहु तथा हाथ उत्थापन के लिए पंख बन गए हैं तो क्या उनके पैर, बाहु तथा हाथ और काम नहीं कर सकते ? आश्चर्य है कि वे सारे कार्य कर सकते हैं जो साधारणतया पैर, बाहु तथा हाथ करते हैं। वे चलते हैं, वृक्षों पर चढ़ते हैं, आहार हाथ से पकड़कर भी खाते हैं, कीड़ों को पकड़कर मारते भी हैं। कलाई से चारों अंगुलियों में तो पंख का विशाल फैलाव होता है, किंतु अंगूठा अन्य स्तनपायी शिकारियों की तरह अपने 'नखर' (ciaw) रूप में ही रहता है जो पकड़ने के काम में आता है, विशेषकर वृक्षों पर चढ़ते और फलाहारी चमगादड़ों के दो नखर होते हैं– एक तो अंगूठा और दूसरा तर्जनी, क्योंकि फलों की खोज में उन्हें शाखाओं तथा टहनियों की बीच घूमना पड़ता है। बड़े फल खाते समय वे फल को एक पंख में पकड़ लेती हैं या दोनों कलाइयों से पकड़ लेती हैं।

चमगादड़ चल तो लेती है किंतु डगमग डगमग ही चल पाती है। उनके दोनों पैर ऊरु झिल्ली से जुड़े रहते हैं जो हिलने की अधिक स्वतंत्रता नहीं देते। वह 'ऊरु झिल्ली' उड़ने के लिए अधिक आवश्यक है और इसके पूरे फैलाव का लाभ लेने के लिए, घुटने के बजाय आगे की तरफ मुड़ने के पीछे की तरफ मुड़ते हैं अन्य जानवरों से उल्टा किंतु मानव के समान। जिस तरह चमगादड़ों के हाथ के पंजे विशाल होते हैं, कुछ उसी तरह पैर के पंजे बहुत सशक्त होते हैं। किंतु पक्षियों के समान वे अपना शिकार पैर से नहीं पकड़ते, कुछ फलाहारी जातियों को छोड़कर गुफाओं, कोटरों, या गुम्बदों आदि में आवास करती हैं। चमगादड़ न तो अधिक गर्मी बर्दाश्त कर सकते हैं और न शीत। अधिक गर्मी में तो वे शक्तिहीन हो गिर जाते हैं और अधिक शीत में अपने को 'निस्पन्दित' (हाइबरनेट) कर लेते हैं। इसीलिए ध्रुवीय क्षेत्रों को छोड़कर, चमगादड़ अन्य सारे जलवायु क्षेत्रों को आबाद करते हैं, तब भी अधिकांश

चमगादड़ों की जातियाँ भूमध्यरेखीय जलवायु तथा समशीतोष्ण जलवायु के क्षेत्रों को ही आबाद करती हैं। जहाँ अधिक शीत पड़ती है, वहाँ या तो वे निस्पंदन करती हैं या प्रवासन। गुफाओं में ताप वर्ष भर सम ही रहता है, इसलिए चमगादड़ों का सर्वाधिक प्रिय आवास स्थल गुफाएँ हैं। छोटे चमगादड़ चट्टानों के बीच दरारों में रहते हैं, इस हेतु उनके सिर भी चपटे रहते हैं। गुफाओं में छत पर लटकने के लिए उन्हें अपने पैरों की ताकत पर निर्भर रहना पड़ता है। इसलिए उनके पंजे बहुत शक्तिशाली होते हैं। किन्हीं जातियों के तलुओं में चूषण गद्दियाँ (suction pad) होती हैं जिससे वे छिपकली की तरह चिकनी चट्टानों में चिपक सकती हैं। दूसरे, जब वे छतों की निचली सतहों पर अपने घोंसलों पर उतरती हैं तब उसके पास दो तरीके होते हैं। एक तो वे पहले अपने पंख के अंगूठे नखर से कुछ पकड़े, और फिर झूलकर उल्टी होकर पैर पंजों से गुट्टा सा कुछ पकड़कर लटक जायें। दूसरे, घोंसले पर उतरते समय ही कुलाटी सी खाकर, एकदम पैर पंजों से ही उस गट्टे को पकड़कर लटक जायें। कुछ जातियाँ पंख–नख तथा नद–नख दोनों से गुट्टों को पकड़कर झूला सा लटक जाती हैं।

यद्यपि चमगादड़ की पूँछ दिशा नियंत्रण के काम में नहीं आती, कुछ जातियों में, चमगादड़ वेग कम करने के लिए पूँछ सहित अरु झिल्ली को ऊपर करती है। पूँछ किन्हीं जातियों में ऊरू झिल्ली से स्वतंत्र रहती है। कुछ में उसका हिस्सा रहती है, ऐसे में ऊरु–झिल्ली पर नियंत्रण बढ़ जाता है और उड़ान में उसका उपयोग हो सकता है। कुछ छोटी होती हैं, कुछ बड़ी और कुछ गायब रहती हैं। कुछ में पूँछ इतनी लंबी कि झिल्ली के बाहर आकर वह नख सरीखे के काम में आती है। अंतर्निहित पूँछ से ऊरु झिल्ली के उपयोग बढ़ जाते हैं। जैसा कि ऊपर बतलाया गया है, यह वेग कम करने के लिए अवरोधक या ब्रेक का काम कर सकती है, अपने शिकार या फल इकट्ठा करने के काम आ सकती है। यदि कोई कीड़ा मुँह में नहीं आया तो उसके यह अपने पंख से मारकर, उसे उड़ते समय कुशलता से अपने इस ऊरू थैले में लोक सकती है। फिर इस थैले में अपना सिर डालकर उस कीड़े को मारती है और खाती है। चमगादड़ों की कुछ जातियाँ अपने सद्यःजात शावक को पहिले इसी थैले के झूले में लेती हैं, तत्पश्चात् चाटकर साफ करती हैं और उसका मुँह अपने स्तन पर लगाकर दूध पिलाती है। इसके शावक लगभग 15–20 दिन अपनी माँ से चिपटे रहते हैं। पंजों से माँ के शरीर के अतिरिक्त उन्हें मुँह से अपनी माँ के चूचुक पकड़े रहना पड़ता है। शावक माँ को तभी छोड़ते हैं जब वे स्वतंत्र रूप से उड़ने योग्य हो जाते हैं। अमेरिकन नेचुरल हिस्ट्री (1826) में एक घटना का वर्णन है। एक लड़के ने एक शावक पकड़ा और अपने घर ले गया। दूसरे दिन जब उसे संग्रहालय ले जा रहा था तब रास्ते में उस शावक की माँ ने पहचान लिया और वह माँ उस लड़के के चक्कर लगाने लगी। जब लड़का चलता ही रहा तब वह माँ उसकी छाती पर बैठ गई। लड़का दोनों को संग्रहालय ले गया। चमगादड़ों का एक और विचित्र व्यवहार है। नर और मादा के विश्राम स्थल अलग अलग स्थानों (कुछ अपवादों सहित) में होते हैं। घोंसले तो ये (एक अपवाद) बनाते ही नहीं। केवल प्रजनन ऋतु में नर और मादा मिलते हैं अन्यथा नहीं।

छोटे कीड़ों को चमगादड़ हवा में ही खा लेता है। बड़े कीड़ों और गिरे फलों को ये विश्राम स्थल पर

लाकर खाते हैं। पक्षी की केवल कुछ जातियाँ ही रंगण (hower) (एक ही बिंदु पर उड़ना) कर सकती है, किंतु सभी चमगादड़ (उड़न लोमड़ी को छोड़कर) रंगण कर सकते हैं। फलाहारी चमगादड़ रंगण में ही वृक्षस्थ फल को कुतर कुतर कर खाते हैं।

चमगादड़ स्तनपायी संघ का प्राणी है। इसके गण का नाम है किरोप्टेरा (पंख हस्त) (chiroptera) जिसके दो उपगण हैं– विशाल पंखहस्त (Megachiroptera) तथा लघु पंख हस्त (Microchiroptera)। विशाल पंख हस्त मुख्यतया फलाहारी (इसमें मांसाहार तथा पुष्पाहार भी हैं) तथा लघु पंख हस्त मुख्यतया कीटाहारी हैं, इसमें रक्तपान, फलाहार तथा पुष्पाहार भी सम्मिलित हैं। पानी दोनों ही उपगण के चमगादड़ नियमित रूप से पीते हैं, और ये पानी पर उड़ते ही उड़ते ही पानी पी लेते हैं। वैसे तो कुछ चमगादड़ (यथा उड़न लोमड़ी) पानी पर उड़ते उड़ते मछली भी पकड़ लेते हैं और फिर सुरक्षित स्थान पर जाकर खाते हैं।

हमें आमतौर पर चमगादड़ कम ही दिखते हैं, किंतु इनकी जातियों की संख्या लगभग 900 है जो स्तनपायी संघ में कृंतक (रोडैन्ट) गण के बाद दूसरा है। किसी किसी गुफा में ये लाखों की संख्या में रहते हैं। यह भी इनमें एक अद्‌भुत क्षमता है कि एक ही गुफा में लाखों की संख्या में रहते हुए पराध्वनि–रेडार का उपयोग करते हुए इनमें कोई टक्कर नहीं होती। अर्थात् सभी की पराध्वनि में कुछ नितांत अपनी पहचान बनी हुई है ताकि अन्य चमगादड़ों द्वारा प्रसारित पराध्वनियों के स्पन्द किसी अन्य चमगादड़ को कोई बाधा नहीं पहुँचाते। आप कल्पना करें छोटे से स्थान में लाखों मनुष्यों के भीड़ की और उसमें सभी चिल्ला रहे हैं, आप अपनी झाईं तो क्या किसी की भी बात को समझ नहीं पायेंगे। इन गुफाओं में पड़ा इनका टनों मल उत्तम उर्वरक होता है। फलाहारी चमगादड़ों के आवासों में भी फलों की लाखों गुठलियाँ मिलती हैं जिन्हें अक्सर ठेके पर बेचा जाता है।

बहुत लम्बे समय तक यह रहस्य बना रहा कि गहन अंधेरी रात्रि में भी ये चमगादड़ किस तरह कीटों को, तथा तार समान बारीक अवरोधों को देख लेते हैं। यहाँ तक कि इनके कंठ की विशेष सशक्त पेशियों को देखेन के बाद भी, बहुत देर तक, इनका उपयोग समझ में नहीं आया। जब 'रेडार' की अवधारणा आई तब समझ में आया कि चमगादड़ तो प्राकृतिक रेडार का उपयोग करोड़ों वर्षों से कर रहे हैं। ये रेडार द्वारा प्रयुक्त विद्युत चुम्बकीय वर्णक्रम (जैसे रेडियो तथा सूक्ष्म तरंगें) का उपयोग न कर ध्वनि वर्णक्रम का उपयोग करते हैं। यह हमारे तथा चमगादड़ों के दोनों के सौभाग्य की बात है कि ये उन पराध्वनि (अल्ट्रासैनिक) आवृत्तियों का उपयोग करते हैं जिनकी आवृत्ति 30 किलो हर्ट्‌ज से लेकर 120 किलो हर्ट्‌ज से भी अधिक होती है और जो हमें सुनाई नहीं देती। हमें तो बमुश्किल 20–20000 हर्ट्‌ज आवृत्ति वाली ध्वनि सुनाई देती है। नहीं तो इन दोनों का पास पास आना ही हमें भयंकर सिरदर्द दे देता। अपने कंठ के ध्वनि उपकरण से जैसे हम अपनी आवाजें पैदा करते हैं, उसी तरह ये वे ध्वनियाँ पैदा करते हैं जो हमें सुनाई नहीं देती हैं। यदि इनके मुँह बंद कर दिए जाएँ तब ये स्पंदों को नहीं भेज पातीं। इनके कान भी विशेष रूप से बड़े होते हैं। जो तरंगें मुँह से भेजते हैं वे जब मार्ग में कोई अवरोध पाती हैं तब वे लौटती हैं और उन्हें यह सुनते हैं और उन्हें इस अवरोध की दिशा तथा दूरी की जानकारी मिल जाती है। इनके द्वारा प्रेषित ध्वनि (पराध्वनि) लगातार न होकर स्पंदों (पल्सेज़) में अर्थात् पैकेट में या टुकड़ों में होती है। इन स्पन्दों की दर अर्थात् संख्या प्रति सेकेंड भिन्न उद्‌देश्य के लिए भिन्न होती है जब यह अपनी गुफा से निकलती है तब दस स्पन्द प्रति सेकेंड भेजती है क्योंकि एक तो, वहाँ के विषय में, वहाँ के अवरोधों के विषय में उनके पास पूरी जानकारी होती ही है तथा दूसरे वहाँ उनका वेग भी धीमा होता है। बढ़ते बढ़ते यह स्पन्द आवृत्ति उस समय पचास स्पन्द प्रति सेकेंड तक हो जाती है, जब उसे किसी उपयोगी अवरोध से टकराकर लौटे स्पन्द मिलने लगते हैं।

फलाहारी चमगादड़ के कान साधारण होते हैं

जबकि कीटाहारी चमगादड़ के कान विशेष बड़े तथा विशेष बनावट वाले होते हैं। ये फलाहारी कुछ अपवादों (dog faced bats (Rousettus)) सहित बड़ी आँखों वाले होते हैं तथा दृष्टि पर ही निर्भर करते हैं। कीटाहारियों के कान जितने बड़े होते हैं वे अवरोध (या शिकार कीट) की दशा उतनी ही परिशुद्धता से आँक सकते हैं। कुछ जातियों के कान इतने बड़े होते हैं कि सोते समय वे उन्हें 'तह' बनाकर छोटा कर लेती हैं। इनके विषय में अंग्रेजी की यह कहावत शब्दशः लागू हो सकती है– "We all are ears" (इसका भावार्थ होता है– हम सुनने के लिए पूरी तरह तैयार हैं)। इन लम्ब कर्णी चमगादड़ों को जब देखो कान ही कान दिखाई देते हैं। दिशा की और भी परिशुद्धता से जानकारी प्राप्त करने के लिए, कीटाहारी चमगादड़ अपने दोनों कानों को अलग अलग घुमा सकता है। जो स्पन्द किसी भी अवरोध से टकराकर लौटता है उसका गुण अवरोध के गुण से प्रभावित हो जाता है। अर्थात् यदि लौटे स्पन्द के गुण के विश्लेषण से अवरोध के प्रकार का पता लग सकता है जैसे कि एक दीवार से लौटा स्पंद, एक हिलते वृक्ष से लौटा स्पंद तथा किसी कीट से लौटा स्पंद– ये तीनों भिन्न गुणों वाले होंगे। कानों की विशेषता, उसके आकार तथा उसमें संयुक्त कुछ उपांग लौटे हुए स्पंद के भिन्न गुणों के आधार पर चमगादड़ को अवरोध के प्रकार की जानकारी देता है।

कीटाहारी चमगादड़ों की नाक के पास एक और संवेदनशील इंद्रिय है। यह नाक के पास की त्वचा का ही विकसित रूप है, इसका नाम है 'नासिका पत्र' (noseleaf)। यह नासिका किन्हीं कीटाहारी यथा, भारतीय छद्म वैम्पायर (Indian false vampire, Megaderma lyra) में छोटी तथा साधारण होती है तथा किन्हीं कीटाहारी, यथा नासिका पत्रित चमगादड़ों (leafnosed bats, Hipposideros) तथा भैरव नासिका चमगादड़ों (Horseshoebats, Rhinolofus) में बड़ी तथा विचित्र संरचना वाली होती है। इस नासिका संरचना में अनेक सलवटें होती हैं जिनमें संवेदनशील रोम होते हैं। ये रोम भी लौटे स्पंदों के आने पर, कान में स्थित रोमों की तरह कम्पन्न करते हैं और अवरोधों की जानकारी देते हैं। इनमें भी दिशा ज्ञान देने की क्षमता होती है, क्योंकि विशेष स्पंदों के अभिग्रहण के समय ये चमगादड़ अपना सिर दाएँ बाएँ घुमाते हैं। सम्भवतः विशिष्ट नासिका की अतिरिक्त सहायता से उपरोक्त कीटाहारी रात्रि के गहन अंधकार में वृक्षों की शाखा तथा टहनियों के बीच कीट खोजने में विशेष सफलता प्राप्त करते हैं।

सम्भवतः अभी तक विचित्र चमगादड़ों के संपूर्ण संवेदन तंत्र की जानकारी मनुष्यों को नहीं है क्योंकि प्रयोगों के दौरान छोटी सी भारतीय पिपैस्त्रैल (Indian Pipistrelle, Pipistrellus coromandra) की आँखों को तथा कानों को बंद कर दिया गया (इसमें नासिका पत्र नहीं होते) तब भी वह मजे से अवरोधों से बचती हुई उड़ती रही और उसे जाल में पकड़ने के प्रयत्न भी असफल रहे। इनकी विचित्र संवेदनशीलता का एक और उदाहरण है इनका उन रात्रियों में विशेष और अधिक संख्या में अपनी गुफाओं से निकलना जिनमें कीड़े भी अधिक संख्या में निकलते हैं। यह मात्र संयोग है या कुछ संबंध है ? कीड़े अधिक संख्याओं में उन शामों को अधिक निकलते हैं, जिनमें तापमान सामान्य से अधिक होता है। बाहर तो तापमान बदलता रहता है किंतु गुफा में अत्यंत कम बदलता है। तब ? जब भी तापमान बदलता है, वायु दाब भी बदलता है, गुफा में भी, और चमगादड़ दाब के सूक्ष्म परिवर्तनों को भी आँक लेते हैं। चमगादड़ के चर्म पंख भी संवेदनशील होते हैं और वे इनका उपयोग भी कुशलतापूर्वक कर लेते हैं। तथा इन अनेक संवेदन इंद्रियों को समेकित रूप से समझने की भी क्षमता चमगादड़ों में होनी चाहिए।

ऐसा नहीं है कि प्रकृति में केवल चमगादड़ ही अवरोधकों या शिकार की स्थिति की जानकारी 'प्रतिध्वनि–निर्धारण' (echo location) द्वारा करते हैं। सागर सील तथा ह्वेल भी इस पद्धति का उपयोग करते हैं। वैज्ञानिकों का विश्वास है कि कुछ अंधेरी गुफाओं में रहने वाली लघुवतासियाँ (Swiftlets, collorallia) आदि पक्षी की जातियाँ भी इस पद्धति का उपयोग करती हैं।

ऐसा भी नहीं है कि पक्षी या ह्वेल या तितलियाँ ही सुदूर प्रवासन करती हैं, अमेरिकी लाल चमगादड़ (Lasiunus borealis), पलित (श्वेत रोमिल) (large hoary bat, Lasirus cinereus) चमगादड़ तथा रजत (Silverhaired, Lasionycteris noctivagans) चमगादड़– ये तीन प्रजातियाँ ग्रीष्म ऋतु में अमेरिकी महाद्वीप के उत्तरी भागों को आबाद करती हैं तथा शीतऋतु आने पर यू.एस.ए. के दक्षिणी भागों में प्रवास करती हैं। ये तीनों वृक्षवासी हैं, अतएव गुहावासियों की तरह 'आवासी' न होकर सुदूर प्रवासन करती हैं। अपना दिकचालन ये अधिकांशतया समुद्रतट के सहारे करती हैं, किंतु अधिकांशतया रात्रि में।

चमगादड़ों के पास निविड़ अंधकार में कीड़ों को पकड़ने के लिए अद्‌भुत प्रतिध्वनि निर्धारण तंत्र है तो निरीह पतंगों ने भी अपने बचाव के लिए अद्‌भुत प्रतिकार विकसित कर लिए हैं। सुंदर तितलियाँ तो कड़ुए विष अपने शरीर में पैदा कर अपनी रक्षा कर लेती हैं, जिसमें उनके रंगरूप उनके कड़ुए विषैलेपन की चेतावनी देते हैं। इन तितलियों को हम 'विष कन्या' नहीं कह सकते, क्योंकि विष कन्याएँ तो शत्रु को अपने विष से मारती हैं। ये विष तितलियाँ यदि चेतावनी न दें तो वे विश्वप्रसिद्ध डिटरैन्ट सिद्धांत का लाभ नहीं उठा सकतीं। क्योंकि पक्षी तो उन्हें खा लेंगे और कष्ट भोग लेंगे, किंतु भविष्य में पहचानेंगे कैसे, वही चेतावनी देने वालो पीले–काले आदि विशिष्ट रंगों के उपयोग से। इसलिए पक्षी एकाध बार धोखे से खा भी लें तो बाद में नहीं खाते। विष तितलियों को पहली बार खाने के बाद वे तुरंत उल्टी कर देते हैं, और पाठ सीख लेते हैं। किंतु बेचारे पतंगे रात्रि में क्या करें ? कुछ पतंगों की जातियों ने चमगादड़ वाली पराध्वनि पैदा करने की क्षमता विकसित कर ली है। जब चमगादड़ उन्हें खोजने के लिए पराध्वनि स्पन्द भेजता है, वे उसे सुनकर तुरंत उसी आवृत्ति पर ऐसा पराध्वनिक स्पंद भेजते हैं कि उसे अपने पुराने अनुभव से मालूम हो जाता है कि यह कोई कड़ुआ विषैला पंतगा है। इसे खाने में वैसा की कड़ुआ स्वाद मिलेगा और कष्ट होगा जैसा पहली बार इस चेतावनी के बावजूद जब उसे खा लिया था। वे तुरंत उसे बचाकर आगे चले जाते हैं। ऐसा ही कुछ प्रतिकार लड़ाकू विमानों को करना पड़ा था जब रेडारों ने उन्हें 100–200 मील दूरी से देखकर शत्रु के लड़ाकू विमानों को उनकी दिशा दूरी स्थिति की सतत जानकारी देना प्रारंभ किया। किंतु इसके लिए वैज्ञानिकों ने बड़ी बड़ी युक्तियाँ सोचीं, इंजीनियरों ने विशेष उपकरणों के आविष्कार तथा निर्माण किए। उन्होंने इस तरह युद्ध के तीन आयामों यथा जल, थल तथा नभ में एक चौथा आयाम जोड़ा– 'इलेक्ट्रानिकी युद्ध'। चमगादड़ों की दुनिया हमारी दुनिया से कम विचित्र नहीं।

दुनिया का सबसे छोटा स्तनपायी प्राणी किटी शूकर नासिका चमगादड़ है– जिसे आम भाषा में बम्बल बी (गुंज मक्षिका) कहते हैं। वहाँ के लोग इसे 'कीट' समझते हैं। यह थाइलैंड की प्रसिद्धि बढ़ाता है। इसके शरीर की लंबाई 30 मिमी तथा पंख विस्तार 160 मिमी है। इसका वजन 2 ग्राम से भी कम है जबकि दुनिया का विशालतम चमगादड़ मलेशिया तथा इंडोनेशिया को प्रसिद्धि देने वाला 'कलौंग' है। यह रक्तपान (वैम्पायर) नहीं करती है। यह फलाहारी चमगादड़ उड़न लोमड़ी के नाम से भी विख्यात है। इसका पंख विस्तार 1.7 मीटर है, शरीर की लंबाई 40 सेमी तथा वजन 900 ग्राम है। चमगादड़ उड़ाकू तो अत्यंत कुशल होते हैं तथा कुछ जातियाँ 2000 किमी की दूरी अपने शीतकालीन प्रवासन के लिए करती हैं। किंतु तेज उड़ान में ये पक्षियों के सामने नहीं ठहर सकते। सबसे तेज उड़ने वाले चमगादड़ हैं 'नॉक्ट्यूल' चमगादड़ तथा लघुपंख चमगादड़ जिन्हें 49.6 किमी प्रति घंटा के वेग से उड़ते हुए देखा गया है। शायद इनके धीमे उड़ने के कारण उल्लू इनका शिकार संवेदनशील रेडार के बावजूद कर लेते हैं। वैसे भी इनका रेडार सामने की तरफ ही सक्षम होता है, और उल्लू पीछे से इनका शिकार करता है।

ऐसा लगता है कि संस्कृत साहित्य में चमगादड़ को हेय दृष्टि से नहीं देखा गया। उसका एक नाम है 'जतु या जतुका' जिसका शाब्दिक अर्थ है बड़े कान, तथा एक राजा का नाम भी मिलता है 'जतुकर्ण'। दूसरा

नाम है अजिनपत्रा अर्थात् जिसके पंख रोएँदार चर्म के बने हों। चमगादड़ों को सबसे अधिक बदनाम किया है 'सामान्य वैम्पायर' (Desmodus rotundus) नामक जाति ने। यह सच है कि यह रक्तपान करने वाला चमगादड़ है जो अमेरिका के गरम क्षेत्रों में पाया जाता है। रक्तपान तो जोंक भी करती है, वरन् उनका औषधिक उपयोग दूषित रसायन निकालने के लिए भी किया गया है। परंतु जोंक कोई बीमारी नहीं फैलाती, किन्तु यह वैम्पायर घातक बीमारी फैलाती है, जैसे 'लकवा–रेबीज' (hydrophobia)। लातिन अमेरिका में प्रतिवर्ष लाखों ढोर डंगर इसके काटने से मरते हैं, और कुछ संख्या में मनुष्य भी। वैम्पायर रक्त चूसने के लिए जब सुई समान दाँत से काटती है, जानवर तो क्या सोए आदमी को भी पता नहीं लगता, जबकि डाक्टरों की महीनतम सुई की चुभन से सोया आदमी जाग जाता है। 900 जातियों में से कुछ (31) ही कीटाहारी जातियाँ इतनी हानिकारक हैं तथा अधिकांश कीटाहारी लाभदायक हैं। और फलाहारी यदि फल खाती हैं तब पराग का और बीजों का वितरण कर वनस्पति को समृद्ध भी करती हैं। रात्रि में फूलने वाले अधिकांश पुष्प बिना इन शाकाहारी चमगादड़ों के फूलना ही बंद कर देंगे। अमेरिकी वैज्ञानिकों ने खोज कर पता लगाया है कि एक रसायन है जो ऐसा 'प्रति–स्कंदक' अर्थात् रक्त को न जमने देने वाला है जो वैम्पायर में घातक रक्तस्राव पैदा कर देता है। इसके प्रभावी उपयोग की उन्होंने दो पद्धतियाँ भी खोज निकाली हैं। एक तो वैम्पायरों को वे जाल में पकड़कर उनकी पीठ पर यह प्रति स्कंदक लगा देते हैं। वे वैम्पायर वापस अपनी गुफा में जाती हैं। वैम्पायर आपस में एक दूसरे की सफाई करती हैं। थोड़ी देर में वे सब पटापट मरने लगती हैं। एक वैम्पायर द्वारा इस तरह 200–300 वैम्पायर मारी जाती हैं। चूँकि इस रसायन का ढोरों पर कोई असर नहीं होता, इसलिए, दूसरी पद्धति में, यह रसायन ढोरों में इंजेक्ट किया जाता है, या उनके शरीर पर लगा दिया जाता है। जो भी वैम्पायर ऐसे ढोर का खून चूसती है, वह भी मरती है और साथ में 200–300 को भी ले जाती है। मेरी समझ में वैम्पायर के विषय में जानकारी तो बाद में आई है, मानव जाति सुंदर रूप के प्रति इतनी आसक्त है कि मानवजाति ने इस बिरले आकार प्रकार वाले तथा रात्रिचर चमगादड़ों को अशुभ ही माना है। यह भी विचित्र बात है क्योंकि मानव के भयंकर शत्रु कीटों पर उल्लू तथा चमगादड़ यदि नियंत्रण न करें तो ये कीट हमारा जीवन यदि नष्ट न कर दें तो अवश्य ही दूभर कर दें। शायद हमको इनसे यह शिक्षा लेनी चाहिए कि किसी भी प्राणी के प्रति हमें अपना राग–द्वेष उसके रूप को देखकर ही नहीं स्थापित करना चाहिए।
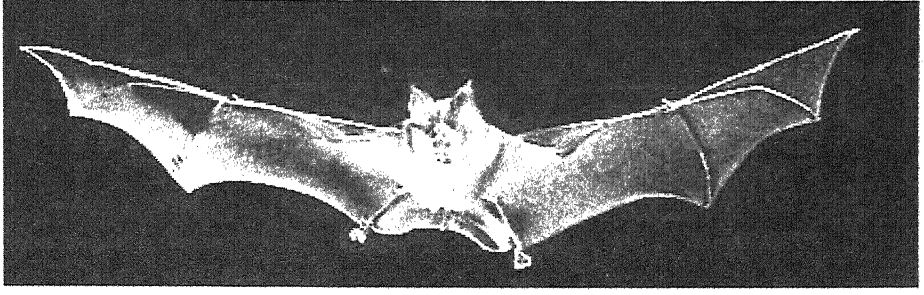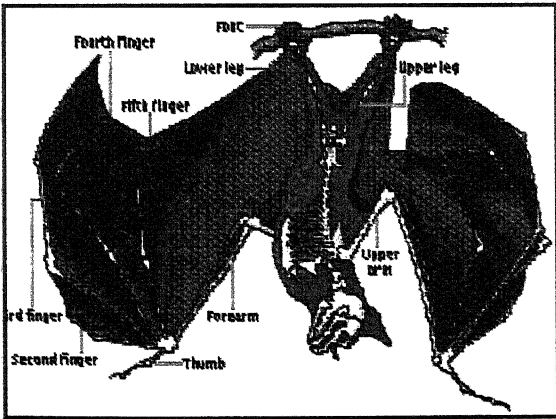
पूर्व एयर वाइस मार्शल
ई–143/21, नोएडा–201301

पुस्तक समीक्षा

पुस्तक : **हिन्दी में विज्ञान लेखन के सौ वर्ष**
(द्वितीय खण्ड)
सम्पादक : डॉ0 शिवगोपाल मिश्र
प्रकाशक : विज्ञान प्रसार, सी–24, कुतुब इंस्टीट्यूशनल एरिया, नई दिल्ली–110016
प्रथम संस्करण : 2003
पृष्ठ संख्या : 450, मूल्य : 250.00 रुपये

'हिन्दी में विज्ञान लेखन के सौ वर्ष' (प्रथम खण्ड) के प्रकाशन के बाद इसके द्वितीय खण्ड का प्रकाशन स्वागतयोग्य है। इस खण्ड में ऐसे 80 लेखों का संकलन हुआ है जो 1950 के पूर्व हिन्दी की विविध पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं और जिनका सम्बन्ध जीवनोपयोगी विज्ञान से है।

इस खण्ड की विशेषता है इसके अन्त में दिये गए दो परिशिष्ट। पहली परिशिष्ट में 100 वर्षों में सरस्वती, माधुरी, सुधा, विशाल भारत, हिन्दुस्तानी, गंगा, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, चाँद, सम्मेलन पत्रिका, हरिश्चन्द्र पत्रिका, हिन्दी प्रदीप, मर्यादा तथा वीणा में प्रकाशित विज्ञान विषयक समस्त लेखों के शीर्षकों एवं उनके प्रकाशन वर्ष की सूची है। इसमें 'विज्ञान' में प्रकाशित लेखों की सूची सम्मिलित नहीं है।

द्वितीय परिशिष्ट में विभिन्न विज्ञान पत्रिकाओं के विज्ञान लेखकों की सूची है। साथ ही 100 वर्षों में कुछ लेखकों के कुल कितने लेख छपे, इसका भी उल्लेख है।

इस तरह दोनों परिशिष्ट उन लोगों के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्ध होंगी जिनकी रुचि विज्ञान के विविध विषयों में प्रकाशित होने वाली सामग्री तथा उनके लेखकों के विषय में ज्ञान प्राप्त करने में है।

इन परिशिष्टों में हिन्दी में विज्ञान लेखन के सौ वर्ष के प्रथम खण्ड के वे सारे लेख सम्मिलित हैं जिनमें से उसके 80 लेखों को छाँटा गया था। इस द्वितीय खण्ड में प्रथम परिशिष्ट में दी गई लेखों की सूची में से ही 80 प्रतिनिधि निबन्धों को चुनकर सम्पादित किया गया है।

प्रत्येक लेख के फुटनोट में पत्रिका क़ा नाम एवं प्रकाशन वर्ष अंकित हैं। पुस्तक में लेखों को प्रकाशन वर्ष के अनुक्रमानुसार ही सजाया गया है।

इस द्वितीय खण्ड के लेखों तथा उनके लेखकों के विषय में कुछ कहना आवश्यक प्रतीत होता है–

1. कुछ लेख जीवनियों के रूप में हैं– यथा राय बहादुर लक्ष्मीशंकर मिश्र, चार्ल्स डार्विन, पंजाब का सर्वप्रथम वैज्ञानिक, डाक्टर वामन राव कोकटनूर, भारतीय एडीसन डाक्टर शंकर बिसे, डॉ0 अल्बर्ट आइंस्टाइन, डॉ0 सरयू प्रसाद तिवारी, जमशेद जी नौशेर खाँ जी टाटा, तपस्विनी मैडम क्यूरी, सर जेम्स जीन्स, आचार्य

बीरबल साहनी। इनमें से अनेक जीवनियाँ हिन्दी के साहित्यकारों द्वारा लिखित हैं।

2. कृष्णदेव प्रसाद गौड़ द्वारा लिखित केंचुए का महत्व, मुकुट बिहारी लाल द्वारा लिखित महोबे में पानों की खेती, आँख पर चन्द्रधर शर्मा गुलेरी के लेख महत्वपूर्ण हैं।

3. मलेरिया, ताऊन जैसे रोगों पर निबन्ध जो आज भी सामयिक हैं।

4. धृतराष्ट्र के सौ पुत्र– लेख आज की जैव प्रौद्योगिकी के लिए चुनौती है।

5. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा लिखित लेख– हरिद्वार – विज्ञान में यात्रा विवरण की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

6. हरिवंश राय बच्चन का लेख, कविता और विज्ञान दृष्टव्य हैं।

7. आहार, स्वास्थ्य विषयक अनेकानेक लेख हैं जो उपयोगी हैं।

8. उद्योग से सम्बन्धित लेख– यांत्रिक चित्रकारी, जूते की पालिश आदि उल्लेखनीय हैं।

इस खण्ड में कुछ लेखिकाएँ भी हैं। लेखकों में रामदास गौड़, फूलदेव सहाय वर्मा, श्यामनारायण कपूर, रामेश बेदी, ओंकारनाथ शर्मा तथा शंकरराव जोशी प्रसिद्ध विज्ञान लेखक हो चुके हैं।

इस संग्रह का महत्व विज्ञान के विविध पक्षों पर लेखन से अवगत कराने में उतना ही है जितना कि तत्कालीन पारिभाषिक शब्दावली के व्यक्तिनिष्ठ प्रयासों से परिचित कराने में।

इस खंड में यथास्थान चित्र दिए गए हैं जो लेखों के मूलरूप को सुरक्षित रखने की दृष्टि से प्रतीत होते हैं।

वर्तनी को तत्कालीन मुद्रित सामग्री के अनुसार रहने दिया गया है। कुछ कठिन शब्दों के अर्थ फुटनोट में दिए गए हैं।

निस्सन्देह इस संकलन में हिन्दी में विज्ञान लेखन में स्वतन्त्रतापूर्व जिस तरह का विकास हुआ, उसकी स्पष्ट झाँकी मिलती है।

आवश्यकता है कि भाषा, शैली तथा व्यक्त विचारों की गहन समीक्षा हो, शोध हो।

पुस्तक की छपाई सुन्दर है। यह प्रत्येक पुस्तकालय के लिए उपयोगी है और व्यक्तिगत संग्रह के लिए अनिवार्य है। प्रकाशक तथा सम्पादक को बधाइयाँ !

डॉ0 प्रभाकर द्विवेदी
439ए, बासुकी खुर्द
दारागंज, इलाहाबाद

विज्ञान केवल एक राष्ट्र की सेवा नहीं करता। इसका लक्ष्य लाभ उठाना या प्रगति करना नहीं है। इसका लक्ष्य है सत्य का निमर्म उद्घाटन, पदार्थो को वस्तुनिष्ठ रूप में जानना। विज्ञान का उद्देश्य है सत्य का ज्ञान। यह आपके उद्देश्य में साधक हो सकता है और बाधक भी बन सकता है, लेकिन जहाँ तक वैज्ञानिक अनुसंधान का सम्बन्ध है, हमारा यह उद्देश्य कतई नहीं होना चाहिए। हमें अपने आपको इसके लक्ष्य के प्रति पूरी तरह से समर्पित कर देना चाहिए और सच्चाई को जानने की कोशिश करनी चाहिए।

- डॉ. राधाकृष्णन

अनोखी है दुनिया चींटियों की

डॉ० कृष्ण कुमार मिश्र

चींटियों के बारे में समझा जाता है कि वे तुच्छ और कमजोर प्राणी हैं। उनकी तुच्छता संबंधी जनसाधारण की अवधारणा को इसी उपमा से समझा जा सकता है कि जब कभी किसी को मुकाबले में छोटा और कमजोर कहना होता है उसे चींटी कहा जाता है। चींटी की तरह मसल देने की बात भी सुनी जाती है। लेकिन क्या वास्तव में चींटियाँ इतनी नाजुक होती हैं ? क्या सचमुच में वे इतनी हेय होती हैं ? अध्ययन से प्राप्त नतीजे दूसरी ही कहानी कहते हैं। वास्तव में चींटियाँ बड़ी मजबूत, लगनशील और दमखम वाली प्राणी होती हैं। मनुष्य को अपने सामाजिक प्राणी होने का बड़ा गर्व होता है लेकिन बहुतों को यह जानकर अचरज होगा कि ये चींटियाँ भी सामाजिक प्राणी हैं। इंसान की तरह उनका भी अपना एक समाज होता है। उस समाज में वे सुव्यवस्थित और कायदे–कानून के अनुसार जीवन–यापन करती हैं। चींटियों के एक निश्चित समुदाय में हजारों सदस्य होते हैं। उनमें सबके काम बँटे होते हैं। इसे श्रम विभाजन कहा जाता है। कामों में घर का निर्माण, उसकी साफ–सफाई, सामुदायिक सुरक्षा और संरक्षा का दायित्व, बच्चों की देखरेख और भोजन जुटाने की जिम्मेदारी वगैरह शामिल होते हैं। उनकी इसी अद्भुत व्यवस्था से प्रभावित होकर हिन्दी के विख्यात कवि सुमित्रानंदन पंत ने चींटो को देखा ! शीर्षक से एक सुंदर और मोहक कविता लिखी है जिसमें वे चींटियों के इन्हीं गुणों का बखान करते हैं।
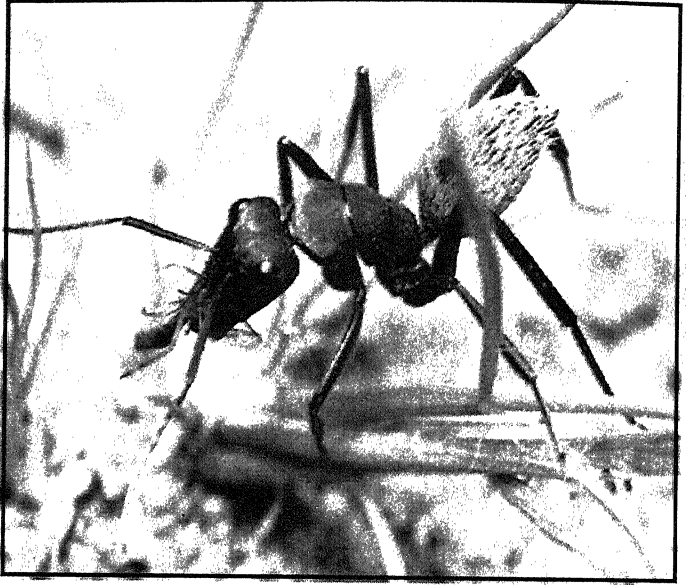
चींटियाँ आपस में सूचनाओं का आदान–प्रदान करती हैं। सूचनाओं का यह संचार उनमें मौजूद गंधयुक्त रसायनों की मार्फत होता है। इस तरह से कह सकते हैं कि चींटियाँ गंध की भाषा में बात करती हैं। इन गंधयुक्त रसायनों को फेरोमोन्स कहते हैं। फेरोमोन्स कार्बनिक रसायन होते हैं जो वाष्पशील होते हैं।

प्राणिजगत के वर्गीकरण के अनुसार चींटियाँ कीट समूह की प्राणी हैं। इनका शरीर सिर, वक्ष और उदर में बँटा होता है। फेरोमोन्स का स्राव चींटियों के इसी उदर भाग से होता है। चींटियों के शिरोभाग में

एंटिना होता है। यह ग्राही अंग है जो दूसरी चींटी द्वारा स्रावित रसायन की गंध को पकड़ता है।

फेरोमोन्स कई तरह के होते हैं। अलग अलग परिस्थितियों में अलग अलग प्रकार के फेरोमोन्स का स्राव होता है। इन अलग अलग फेरोमोन्स के मायने अलग अलग होते हैं। किसी समुदाय विशेष के लिए एक निश्चित फेरोमोन ही उनका परिचयपत्र होता है। जब चींटियों के कोई दो सदस्य आपस में मिलते हैं तो इसी फेरोमोन की मदद से जान लेते हैं कि वह अपने ही दल का सदस्य है। यदि कोई अनजान सदस्य भटक कर या जानबूझकर दूसरे दल में चला जाय तो सभी को यह बात मालूम हो जाएगी कि अमुक सदस्य बाहरी है। ऐसे में वे मिलकर उसे खदेड़ देंगी।

आपने चींटियों का काफिला देखा होगा। यह देखकर शायद आपको अचरज भी हुआ हो कि ये चींटियाँ अपने मार्ग से बिना भटके कैसे अपने गंतव्य की ओर चलती जा रही हैं। और यदि कभी अपने पथ से भटकती भी हैं तो अपना रास्ता फिर से पा लेती हैं। वास्तव में यह सब फेरोमोन्स का कमाल है। चींटियाँ चलते समय रास्ते में फेरोमोन्स छोड़ती चलती हैं। चींटियाँ उसी गंध के सहारे मार्ग पर आगे बढ़ती जाती हैं। चींटियों की घ्राण संवेदना यानी सूँघने की शक्ति लाजवाब होती है। यद्यपि सूँघने की शक्ति कुत्तों में भी अद्भुत होती है लेकिन चींटियों की क्षमता अतुलनीय है। कुत्तों की इसी घ्राण क्षमता का इस्तेमाल पुलिस और रक्षा सेनाओं द्वारा विस्फोटकों का पता लगाने में किया जाता है। चींटी की संवेदना का उदाहरण यह है कि कोई चींटी एक मिलीग्राम के दस लाखवें भाग यानी 0.01 नैनोग्राम की मात्रा की उपस्थिति सूँघकर पता कर लेती है। आज भी इंसान के बनाये किसी यंत्र से ऐसा कर पाना संभव नहीं है। यह चींटी की अद्भुत क्षमता है जो प्रकृति प्रदत्त है।

गंधरूपी संचार की प्रणाली

मान लीजिए कोई श्रमिक चींटी भोजन की तलाश में निकलती है और रास्ते में उसे गुड़ के टुकड़े बिखरे मिलते हैं। ऐसे में वह फौरन वापस आकर अपने समुदाय के सदस्यों में एक खास फेरोमोन के स्राव की मार्फत इसकी सूचना देती है। सूचना पाकर बाकी सभी श्रमिक चींटियाँ खोजकर्ता चींटी के साथ हो लेती हैं और उस स्थान तक जाती हैं। फिर ये चींटियाँ गुड़ के टुकड़े उठ उठाकर घर ले आती हैं। ऐसा इसलिए क्योंकि चींटियों में खाद्यसंचय की प्रवृत्ति होती है। ये निहायत परिश्रमी और मजबूत प्राणी होती हैं। बहुतों को यह जानकर आश्चर्य होगा कि एक चींटी अपने भार से 10 गुना भार आसानी से खींच लेती है।

चींटियाँ साफ सफाई पर खास ध्यान देती हैं। उनके समुदाय के किसी सदस्य की मृत्यु होने पर शरीर के सड़ने से घर में बदबू न फैले, इसलिए वे श्रमिक चींटियाँ उसे खींचकर चींटीगृह से बाहर कर देती हैं। जिन चींटियों का मृत चींटी के शरीर से सम्पर्क हो गया है, उन्हें तब तक अंदर प्रवेश नहीं मिलता जब तक कि गंध खत्म न हो जाय। प्रयोगों से ऐसा पाया गया है कि यदि चींटियों के मार्ग को क्षतिग्रस्त कर दिया जाय, या फिर कोई रसायन छिड़क कर फेरोमोन्स की गंध को दूर कर दिया जाय तो चींटियाँ अपना मार्ग नहीं खोज पातीं। चींटी समुदाय में साफ सफाई का जिम्मा भी एक खास वर्ग की चींटियाँ देखती हैं। इसके अलावा अंडों की देखभाल तथा उनसे निकलने वाले बच्चों की परवरिश

के लिए चींटियों का एक खास समूह जिम्मेदार होता हैं।

दुनिया में चींटियों की कई किस्में पाई जाती हैं। इनमें कइयों को उनके रंगों के आधार पर आसानी से पहचाना जा सकता है। जैसे, आमतौर पर लोग काली और लाल चींटियों से परिचित होते हैं। इनमें काली चींटियाँ सरल और सीधी स्वभाव की होती हैं। लाल चींटियाँ आक्रामक होती हैं और काटती हैं। उनके काटने से तीव्र प्रदाह (जलन) होता है। ऐसा उनमें मौजूद फार्मिक एसिड की वजह से होता है। दुनिया में ऐसी आक्रामक और हिंसक चींटियों की प्रजाति भी मिलती है जो जानवरों पर टिड्डी दल की तरह से हमला करती हैं और पलक झपकते ही उन्हें चट कर जाती हैं। चींटियों की खास किस्में हमारी घरेलू चीजों को नुकसान पहुँचाती हैं। लकड़ी की बनी चीजों मसलन चौकठों और दरवाजों को ये विशेष रूप से नुकसान पहुँचाती हैं। रसोई में रखी खुली चीजों को चींटियाँ आसानी से साफ कर देती हैं। मीठे खाद्यपदार्थ इन्हें ज्यादा प्रिय होते हैं। नुकसानदायक प्रवृत्ति के कारण इन्हें पीड़क (पेस्ट) कहा जाता है। इनसे छुटकारा पाने के लिए जहरीले रसायनों का प्रयोग करते हैं। इन रसायनों को पीड़कनाशी (पेस्टीसाइड्स) कहा जाता है।

वैसे यह जानकर शायद आपको हैरत होगी कि चीन में चींटियाँ खाई भी जाती हैं। वहाँ उनका खास व्यंजन भी बनता है। वहाँ के जलपानगृहों के मेनू में इनका स्थान होता है। कहा जाता है कि एक बार चीन में बहुत ज्यादा चींटियाँ हो गई थीं। अतः लोगों ने इनसे निजात पाने के लिए इन्हें खाना शुरू कर दिया। इस तरह उनका सदुपयोग हो गया तथा उनकी संख्या पर भी आसानी से नियंत्रण हो गया।

होमी भाभा विज्ञान शिक्षा केन्द्र
टाटा मूलभूत अनुसंधान संस्थान
वी.एन. पुरव मार्ग, मुंबई-400088

वैज्ञानिक शब्दावली निर्माण प्रक्रिया पर शोध

आधुनिक युग में औद्योगिक तथा तकनीकी विकास के फलस्वरूप पारिभाषिक शब्द निर्माण की प्रक्रिया हिन्दी सहित अन्य भारतीय भाषाओं में शुरू हुई। भारतीय संविधान में हिन्दी को 'राजभाषा' का दर्जा मिलने से भी प्रशासन, विधि, कृषि, वाणिज्य, बैंकिंग, रसायन, भौतिकी, गणित, कंप्यूटर और अंतरिक्ष आदि अनेक क्षेत्रों की पारिभाषिक शब्दावली निर्माण का दायित्व राष्ट्रपति ने वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग को सौंपा।

भारतीय संविधान के द्वारा राजभाषा का पद प्राप्त होने के कारण हिन्दी का उत्तरदायित्व बढ़ा। अन्य भारतीय भाषाओं के विकास में मार्गदर्शक भूमिका निभाना भी हिन्दी का दायित्व बन गया।

इस परिप्रेक्ष्य में सतीश धवन अंतरिक्ष केन्द्र शार के हिन्दी अधिकारी श्री पोरुमाल्ल रवीन्द्र ने हिन्दी में अपने अनुसंधान विषय 'वैज्ञानिक शब्दावली निर्माण प्रक्रिया' में प्रशासन, विधि, कृषि, वाणिजय, बैंकिंग, रसायन, भौतिक, गणित, कंप्यूटर और अंतरिक्ष आदि विषय क्षेत्रों की पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण और प्रयोग पर विस्तृत जानकारी प्रस्तुत किया। यह अध्ययन पारिभाषिक शब्दावली पर कार्य करनेवालों, अनुवादकों एवं वैज्ञानिक लेखकों के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा। इसके लिए उन्हें पीएच.डी. की उपाधि श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय ने प्रदान की है। इन्होंने अपने इस अनुसंधान को श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के प्रोफेसर एल्लटूरु शिवरामि रेड्डी के निर्देशन में प्रस्तुत किया।

श्री रवीन्द्र जी को बधाइयाँ

– सम्पादक 'विज्ञान'

विश्व पर्यावरण दिवस पर संगोष्ठी सम्पन्न

5 जून, विश्व पर्यावरण दिवस के अवसर पर विज्ञान परिषद् प्रयाग द्वारा आयोजित संगोष्ठी में विचार व्यक्त करते हुए परिषद् के प्रधानमंत्री डॉ0 शिवगोपाल मिश्र ने कहा कि राष्ट्रीय राजमार्गों के निर्माण के कारण लाखों पेड़ काटे जा रहे हैं। सरकार की कोई स्पष्ट वन नीति न होने के कारण वनों का प्रतिशत कम होता जा रहा है। आज सामाजिक वानिकी का महत्व पहचानने की आवश्यकता है। आने वाले समय में पर्यावरण के सुधार के लिए हमें आज से ही सार्थक कदम उठाने होंगे।

'विज्ञान' पत्रिका के पूर्व सम्पादक श्री प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव ने कई रोचक घटनाओं का विवरण देते हुए पर्यावरण के प्रति जागरूकता उत्पन्न करने का प्रयास किया। उन्होंने पर्यावरण को स्वच्छ रखने के अनेक छोटे छोटे उपायों का वर्णन किया।

कार्यक्रम के संचालक देवव्रत द्विवेदी ने कहा कि प्रकृति के संसाधन सीमित हैं जबकि आबादी निरंतन बढ़ती जा रही है अतः हमें वेदों और उपनिषदों में बताये गये मार्ग पर चलकर अपनी आवश्यकताओं को सीमित करना होगा। तभी प्रकृति और पर्यावरण का संरक्षण सम्भव है।

श्री प्रमोद कुमार मिश्र ने कहा कि यह वर्ष स्वच्छ जल वर्ष के रूप में मनाया जा रहा है। जल संरक्षण एवं जल शुद्धिकरण की दिशा में विशेष प्रयास किये जाने चाहिए।

इस अवसर पर सर्वश्री सत्य प्रकाश शुक्ल, एम.पी. यादव, चन्द्रभान सिंह, राधारमण त्रिपाठी, नरेन्द्र कुमार यादव, भास्कर शर्मा तथा रमेश यादव के अतिरिक्त अन्य गणमान्य विद्वानों ने भी अपने विचार व्यक्त किए।

– देवव्रत द्विवेदी

परिषद् की जोधपुर शाखा से

जल संरक्षण में भागीदारी आवश्यक

जोधपुर। विज्ञान परिषद् प्रयाग, जोधपुर शाखा तथा स्टेट बैंक आफ बीकानेर एवं जयपुर, जोधपुर अंचल के संयुक्त तत्वावधान में 'राष्ट्रीय जल संसाधन' सप्ताह के अंतर्गत 'जल संरक्षण में जन भागीदारी' विषयक विज्ञान संगोष्ठी 20 मई 2003 को आयोजित की गई जिसके मुख्य अतिथि जन स्वास्थ्य एवं अभियांत्रिकी एवं भू जल विभाग के मुख्य अभियंता इंजी0 यू.एम. लोढ़ा थे तथा अध्यक्ष एस.बी.बी.जे. के वरिष्ठ सहायक महाप्रबंधक डॉ0 ए.सी. चुघ थे।

कार्यक्रम का आरंभ सरस्वती वंदना एवं दीप प्रज्ज्वलन से हुआ। एस.बी.बी.जे. के प्रबंधक श्री बी. एस. जोशी ने आगन्तुकों का स्वागत किया तथा श्री भीमसिंह चौहान ने राजभाषा की गतिविधियों पर प्रकाश डाला।

विज्ञान परिषद् की जोधपुर शाखा के सभापति इंजी0 के.एम.एल. माथुर ने देश के प्राचीनतम एवं प्रतिष्ठित विज्ञान संस्था 'विज्ञान परिषद् प्रयाग' के उद्दे,यों, लोकोपयोगी कार्यों तथा जोधपुर शाखा द्वारा किए गए विज्ञान प्रचार–प्रसार के रचनात्मक कार्यों को बताया।

विषय पर विस्तार से चर्चा करते हुए विज्ञान परिषद् की जोधपुर शाखा के प्रधानमंत्री व भूजल

विभाग के वैज्ञानिक डॉ0 डी.डी. ओझा ने अपने उद्बोधन में जल की आवश्यकता तथा वर्तमान में मानव द्वारा विभिन्न दैनिक कार्यों, कृषि एवं उद्योगों में जल में हो रहे अत्यधिक अपव्यय की ओर पारदर्शियों के माध्यम से ध्यानाकर्षित किया। डॉ0 ओझा ने जल संरक्षण की पुरातन विधियों तथा राजस्थान के पारंपरिक जल स्रोतों के बारे में चित्रों सहित जानकारी दी तथा वर्तमान में उनकी उपादेयता को उजागर किया। उन्होंने जनमानस में जल शिक्षा की आवश्यकता को भी प्रतिपादित किया। डॉ0 ओझा ने विभिन्न वर्षा जल संचयन पद्धतियों को भी बताया।
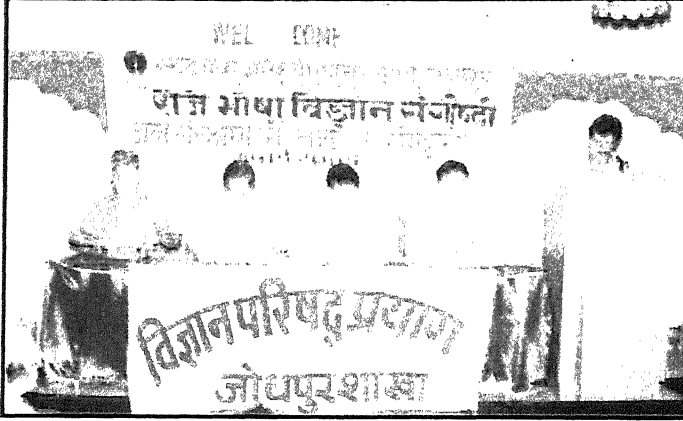
बायें से : के.एम.एल. माथुर, डॉ. ए.सी. चुघ, इंजी. यू.एम. लोढ़ा एवं डॉ. डी.डी. ओझा

कार्यक्रम के मुख्य अतिथि इंजी0 यू.एम. लोढ़ा ने बताया कि जब तक जल से सामान्य जन नहीं जुड़ेगा और इसके संरक्षण में अपनी भागीदारी नहीं निभाएगा तब तक जल संरक्षण का सपना अधूरा रहेगा। उन्होंने जल के अत्यधिक दोहन से गिरते भूजल पर भी चिन्ता व्यक्त की तथा वर्षा जल संचयन के महत्व को उजागर किया।

कार्यक्रम के अध्यक्ष डॉ0 ए.सी. चुघ ने बैंक द्वारा जल संरक्षण की योजनाओं में दिए जा रहे अनुदान को बताया तथा ड्रिप एवं फव्वारा सिंचाई हेतु उपकरणों की खरीद हेतु दिए जा रहे ऋणों को समय की माँग के अनुरूप बताया तथा विज्ञान परिषद् जोधपुर शाखा के कार्यों की भूरि भूरि प्रशंसा की।

तकनीकी सत्र की अध्यक्षता प्रो0 एम.एल माथुर ने की। इस सत्र में काजरी के विभागाध्यक्ष डॉ एम.ए. खान ने अकालग्रस्त क्षेत्रों में वर्षा जल संचय की विभिन्न विधियों को बताया तथा काजरी द्वारा विकसित उन्नत टाँके एवं जल वाष्पन रोकने की विधियों को भी बताया। कमला नेहरू महाविद्यालय के गृह विज्ञान विभाग की डॉ0 मीनाक्षी माथुर ने महिलाओं के जल संरक्षण में दिए जा रहे योगदान को बताया और महिलाओं को जल का वास्तविक प्रबंधक कहा।

काजरी के वैज्ञानिक डॉ0 पीयूष चन्द्र पांडे ने फलदार पौधों के लिए जल की आवश्यकता तथा सौर ऊर्जा के योगदान को उजागर किया तथा सौर ऊर्जा पंपों के बारे में जानकारी दी। केन्द्रीय भूजल मंडल के वैज्ञानिक श्री रामकिशन ने तिवरी क्षेत्र में भूमि जल तथा पानी पंचायतों के गठन के बारे में सुझाव दिया। कार्यक्रम का संचालन श्री राकेश श्रीवास्तव ने किया तथा आभार प्रदर्शन डॉ0 एन.एस. राठौड़ ने किया। संगोष्ठी में विभिन्न विभागों के वैज्ञानिकों, अभियन्ताओं एवं शिक्षाविदों ने भाग लेकर इसे सफल बनाया।

डॉ0 डी.डी. ओझा
प्रधानमंत्री
विज्ञान परिषद् (जोधपुर शाखा)

डॉ0 शिवगोपाल मिश्र द्वारा विज्ञान परिषद् प्रयाग महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद–211002 के लिए संपादित, मुद्रित एवम् प्रकाशित। नागरी प्रेस, 91/186, अलोपी बाग, इलाहाबाद में मुद्रित।

निवेदन

लेखकों एवं पाठकों से :

1. रचनाएँ टंकित रूप में या सुलेख रूप में कागज के एक ओर लिखी हुई भेजी जाएँ।
2. रचनाएँ मौलिक तथा अप्रकाशित हों, वे सामयिक हों, साथ ही साथ सूचनाप्रद व रुचिकर हों।
3. अस्वीकृत रचनाओं को वापस करने की व्यवस्था नहीं है। यदि आप अपनी रचना वापस चाहते हैं तो पता लिखा समुचित डाक टिकट लगा लिफाफा अवश्य भेजें।
4. रचना के साथ भेजे गये चित्र किसी चित्रकार द्वारा बनवाकर भेजे जाएँ तो हमें सुविधा होगी।
5. नवलेखन को प्रोत्साहन देने के लिए नये लेखकों की रचनाओं पर विशेष ध्यान दिया जाएगा। उपयोगी लेखमालाओं को छापने पर विचार किया जा सकता है।
6. हमें चिन्तनपरक विचारोत्तेजक लेखों की तलाश है। कृपया छोटे निम्न–स्तरीय लेख हमें न भेजें।
7. पत्रिका को अधिकाधिक रुचिकर एवं उपयोगी बनाने के लिए पाठकों के सुझाव का स्वागत है।

प्रकाशकों से :

पत्रिका में वैज्ञानिक पुस्तकों की समीक्षा हेतु प्रकाशन की दो प्रतियाँ भेजी जानी चाहिए। समीक्षा अधिकारी विद्वानों से कराई जाएगी।

विज्ञापनदाताओं से :

पत्रिका में विज्ञापन छापने की व्यवस्था है। विज्ञापन दरें निम्नवत् हैं :
भीतरी पृष्ठ पूरा 1000 रु0, आधा पृष्ठ 500 रु0, चौथाई पृष्ठ 250 रु0
आवरण द्वितीय तथा तृतीय 2500 रु0, आवरण चतुर्थ 4000 रु0

भेजने का पता :

प्रधानमंत्री
विज्ञान परिषद् प्रयाग
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद
फोन नं0 : (0532) 2460001